न्न दृष्ट्वा चुद्रबुद्धिरुवाच । तात कथ मद्यपर्य्यन्तं मम भरणं कृतं भवता कथ मिदानीन्न क्रियते । वणिगुवाच ॥ भद्र भवाऽधुना राजानुग्रहा लब्धवैभवो बहूनां भरणे समर्थः कथं मत्तो वणिक्जनात् स्वकीयभरण मिच्छसि किन्तु भवान् पोष्टु मर्हति एवं वाकोवाक्ये । श्लोको यथा ॥

वणिक् प्रत्युपकारार्थी विप्र स्तद्धनगृह्नुकः ।
साध्यासाध्यौ द्वयो स्तच ज्ञातं वैरं परस्परम् ॥ २ ॥

तदनन्तरं क्रुद्धः चुद्रबुद्धिरुवाच । रे वणिगधम किं दृष्टवानसि यदद्य पर्य्यन्तं मम भरणं कृत मेव त्वया तदधुना त्वन्न करिष्यसि किमहन्तव धनन्न जानामि किम्वा राजा मान्न पृच्छति ॥

ततो यदि मह्यन्न दास्यसि तदा राज्ञे दास्यसि सतु तद्वचसा परमच स्त स्तवणिक्चुद्रबुद्धे स्समीहया किमपि किमपि धनन्ददानः क्रमेण क्षीणधनो बभूव तं क्षीणधन श्चिन्तापर न्दृष्ट्वा । वणिग्वधूरुवाच ॥ नाथ

भाषानुवाद ।

वणिक उदासीन देखि चुद्रबुद्धिकहल अश्री अन्नदाता पिता कियक अद्यावधि हमरभरण कयल अपनै कौहेतु एखन नहि करैछी वणिक कहल भल हो एखन राजाक अनुग्रह सौं अहां बाबू धनवान बहुत प्रतिपालन समर्थ तथापि हम वनिआं तकरासौं अपन निर्वाह चहैछी किन्तु अहंइ पालन हमर करीसे समुचित एहन ब्राह्मण ओवणिक वकवाद मे पद्य लेहन ।

चौपाई ॥

वनिआं चाहय प्रत्युपकार ब्राह्मण मन तनि धनसंहार।
इक्षित कार्य्यकविषय असिद्धि दुहुजनका भेल कलहक वृद्धि ॥२

तदनन्तर क्रुद्ध चुद्रबुद्धि कहल अरे अधम वैश्य किछु आखि देखलैछैं जेंअद्यपर्य्यन्त हमर भरण करबे कयलैं तोंह तेंहेतु आव तों नहि करबै कीहम तोहर धन नहि जनै छीकी ओ राजा हमरा नहि पुछैछथि ॥

ततय जौं हमरा नहि देवह तखन राजाकैं देवहुन सेपुन तेहि कथाकौं संत्रस्त सेवैश्य चुद्रबुद्धिक इच्छा किछु २ धनप्रदान करैत क्रमहि चीणधन होइतभेलाह तनिकां चीण धन चिन्तातुरदेखि सोमदत्तकस्त्री पुछल अयिनाथ चुद्रबुद्धि ब्राह्मणकां अहां वढाओल

च, क्षुद्रबुद्धि ब्राह्मणो भवता सम्बर्द्धितो लब्धविभवोऽपि भवते किमपि न ददाति किञ्च भवतः स्वं गृह्णाति किमर्थमस्मै धनं दीयते। वणिगुवाच प्रिये दुर्ज्जनोऽयं यद्यस्मै न दातव्यं तदा राजपैशुन्यं करिष्यति तेन भयेन दीयते तथाहि ॥

पिशाचाः पिशुनाः श्वानो लोभान्धाः स्तुतरान्त्रयः ।
किञ्चिद्दत्वा निवार्य्यन्ते कालयापनकाम्यया ॥ ३ ॥

वणिग्वधूरुवाच। नाथ सब्राह्मणो यदि पिशुनस्तदा भवता कथं संवर्द्धितः वणिगुवाच। प्रिये प्रथमन्न परिचितः पिशुनत्वेन यतः ॥

धातुरेवाऽपराधोऽयं यच्छीलपरिचायिका।
दुर्ज्जनस्य मुखे लक्ष्मलेखा काचिन्न निर्म्मिता ॥ ४ ॥

अपिच। गुणाकारोपकारेण दुर्ज्जनः परिचीयते।
तदा तं कृतकर्म्माणं परिचित्याऽपि किम्फलम् । ५ ॥

भषानुवाद ॥

सेसम्प्राप्त विभवोछथि अहांकाँ किछु नहि दैछथि किन्तु अहिंसौं लयिछथि कीअर्थसौं इनका धन दैछी वणिक उत्तरदेल अयीप्रिया दुर्ज्जन ई जौं हिनका नहि देव तौं राजा निकट हमर पिशुनता करताह ताहि त्रास सौ दैछी देखू ॥

चौपाइ।

लौभहि आंधर पिशुन पिशाच श्वानक ईतिन समक्रमसांच। १
किछु किछु दयकाइ काटीकाल हिनकां जानवदुष्ट विशाल ॥ ३॥

वैश्यस्त्री कहल अहि नाथ सेब्राह्मण जौं पिशुन तौं अहां कीहेतु वढाओल वणिक उत्तरदेल प्रिया प्रथम पिशुनत्वसौं नहिपरिचित हेतु ॥

शोरठा।

विधिक दोष एहिठाम पिशुन शील परिचायिका।
इनि सुखमैं नहिस्थाम रेखानिर्म्मित कयल किछु ॥४
दुर्ज्जन गुणाकार पर अपकारहि जानि पड़।
कृतकर्म्मा अविचार कीफल तनि परिचय प्रकट ॥ ५

वणिग्वधूरुवाच । नाथ परिचितेः । फल मिद मेव यदधुनाऽपि स्वपरि ह्रीयते । वणिगुवाच । प्रवृद्धो व्याधिः कथ मक्रमेण परिहर्तुं शक्यते तेनाऽस्मै किमपि दत्त्वा कालातिक्रमः क्रियत एव । वणिग्वधूरुवाच ॥ नाथ नात्र दानं प्रतिक्रिया यतः ॥

नच दानेन मानेन नच प्रेम्णा प्रसीदति ।
प्रसीदति पराभूतः खलः प्रत्यपकारतः । ६ ॥

अपरञ्च । प्रीत्या ज्ञानात्य ऽसामर्थ्यं दानेन याचते मुहुः ।
खलः प्रत्यपकारेण वश्य मायाति मित्रवत् । ७ ॥

वणिगुवाच । अहं कुटुम्बी लज्जापरतन्त्रः सनिस्त्रपः कथ मक्षम शक्त्या पराभूतो भविष्यति तस्य पराभव स्वएव यदस्मान् पराभवति । वणिग्वधूरुवाच ॥ नाथ दानेन कतिकाल स्तोषणीय स्तदय मुपायः प्रतिभाषते मम चेतसि यदियं कथा राज्ञे निवेद्यते ॥

भाषानुवाद ।

वैश्यस्त्री कहल हेनाथ वरिसयक फलएहने जे एखनहु पर्य्यन्त सेवन हरण करितछि कथि वनिया कहल बाढलव्याधि अक्रमसौं कोना परिहार कयसकब तैं हिनकां किछु दय कालक्षेपण करैछी वणिकस्त्रीकहल हेनाथ नहिएहि विषय दान प्रतिक्रिया ।

चौपाई ।

दान मान कतप्रेम प्रधान खलमन नहि प्रसन्नता आन ।
पावि पराभव रहथिप्रसन्न प्रत्यकारहि होथि वन्न ॥ ६
प्रीतिमें असामर्थ्यसेजान मांगय पुनपुन देखयदान ।
मित्रकसम खलवशहोतखन प्रत्यपकार करी पुनजखन ॥ ७

वणिक कहल हमकुटुम्बी लज्जा परतन्त्र ओपुन लज्जा रहित कोना हमर सामर्थ्य सौंपराभूत हयत गय ओकर पराभव सैह जे हमरा पराभूत करैछ वणिकक स्त्रीकहल नाथ दानसौं कतिकाल ओकरा सन्तुष्ट करव तत्य एहन उपाय हमरा स्फुर्त्ति होइछ मनमे जौं ईकथा राजाक निकट निवेदन करी ॥

यतः। सेनाधन न्नरेन्द्राणां कुकृतिः कुधियान्धनम्।

दैन्य न्धन न्दरिद्राणां धनं साधो र्यथार्थता। ८॥

ततो यथार्थनिवेदनेन राजेवाच प्रतिकर्त्ता भविष्यति वणिगुवाच। आः शान्तं पापं मयाऽपि राजपैशुन्यं कर्त्तव्य न्तर्हि समतैव स्यात् स्वव्यापारेणैवाऽयं विनष्टो भविष्यति। सम्प्रति राजपुरस्कार मासाद्य मन्त्रिणः पैशुन्यं कुरुते। वणिग्वधूरुवाच॥ तत्र किन्निमित्तम्। वणिगुवाच॥ मुखकण्ठुमात्रम्। यतः।

परेषां प्रीति मालोक्य खलस्य शिरसि व्यथा।

स्वेनैवाश्रयदोषेण द्वेषिणो जगता मपि। ९॥

वाणिग्वधूरुवाच। किन्तत्पैशुन्यं वणिगुवाच। राजानं वदति देव मन्त्रिराक्षस स्त्वद्वाञ्छित मिच्छति ततोराजाऽब्रवीत् विप्र ममगुरुराचार्य्यश्चाणक्यो मदीयराज्यमिदं माञ्च मन्त्रिराक्षसस्य हस्ते महताप्रणिधानेन समर्प्पितवान् यदाच मन्त्रितां स्वीकृत्यानेन ममखड्गो गृहीत

भाषानुवाद॥

चौपाई।

नरपति कांधन सब्जसुसैन्य धनदरिद्रका केवल दैन्य।

धन कुबुद्धिकां कुत्सित कर्म्म सज्जन धनगण सत्यसुधर्म्म॥

यथार्थकहला सौं राजा सैह एकर प्रतीकार कर्त्ता हयताह गय वणिकवचन॥ आः शान्त पाप॥ राजनिकट पैशून्यकरव तखन तो जे हने थी तेहने हम समभेलहु अपनहि व्यापारसौं अपनहि नष्टभय जयताहगय॥

संप्रति राज पुरस्कार पावि मन्त्रीक पिशुनता करैछ वणिकस्त्री पुछल ततय कीहेतु वणिककहल मुखकण्डू़ यनमात्र।

दोहा॥

शिरोव्यथाहो दुष्टकैं देखथि आनक प्रीति।

अपनहि हृदयक दोष सौं विश्वक द्वेषि यनीति॥ ९

वणिक स्त्रीपुछल की तनिक पिशुनता वणिक कहल राजाकैं कहैछ हेमहाराज मन्त्रिराक्षसअपनैक अनिष्टचिन्तन करैछथि ततय राजाकहलविप्र हमरगुरु आचार्य्य चाणक्य हमर राज्य ई औ हमरा मन्त्रि राक्षसक हाथमें बहुत प्रयाससौं समर्पित कायल जखन

स्तदाराध्य चाणक्यो मां प्रति निश्चिन्तो बभूव ततश्चाणक्यबुद्धिपरिच्छि न्नेयं काव्यभिचारशङ्का तथाहि ।

नीत्या पर्व्वतकेश्वरोपि निहतो निर्द्दूय नन्दा नव
ज्ञात्वाऽस्मद्दिषकन्यका प्रभृतयो येनाऽपदो वारिताः ।
राजश्रीर्म्मयि निश्चलाच विहिता तस्याऽधुनामङ्गुरो
श्चाणक्यस्य कृतेऽपि कर्म्मणि कुतः स्याद्धिक्रियायाभ्रमः । १० ॥

साधु चन्द्रगुप्त पुरुषगुणेनाभिजात्य मतिक्रम्यते सत्प्रभु रेवासि स र्व्वंच स्वामिनि किं कर्णगतेन छिद्रेण ततः किं कृतं क्षुद्रबुद्धिना वणिगुवाच । सनिस्तप स्तथाऽभेद्य प्रेक्ष्य भेदनिमित्तं पदद्वयं पठित वान् । तथाच ॥

स्वकार्य्याणि स्वयंराजा यो मोहा न्न विलोक्यते ।
चौरा निद्राक्नतस्येव तस्याऽन्ये भुञ्जते धनम् । ११ ॥

भषानुवाद ॥

मन्त्रित्व स्वीकार कय स्वच्छचयल तखन आराध्यचाणक्य हमरा प्रतिनिश्चिन्त होइत भेलाह ततय चाणक्य बुद्धि निरुन्दे ह अर्थमें कीअन्यथा शङ्का ॥

चौपाई ।

नीतिहि पर्व्वत पतिकोमारि नवनन्दक कुलदेलसंहारि ।
विषकन्या सौलेलन्हि बचाय अचलरमा देलभवन बसाय ॥
होअनिष्ट जौं मन्त्री बूत मनमानैछन थिक अजगूत ॥
जेगुरुकृत भेलह्र महिपाल तनि आज्ञा मंत्री प्रतिपाल ॥ १०

वणिकवधू कहल साधुचन्द्रगुप्त महाराज पुरुषगुणसों सन्नीतिमान सत्प्रभु अपनें ॥ सर्व्वथ स्वामीककर्ण लग्नखलसों की ततयकीकयल दौ द्रबुद्धि ॥ वणिककहल औनिर्लज्ज राजाओ मन्ति कां अभेद्यप्रेम जनितें छ तथापि अनेक पदापढल

सोरठा ।

अपन कार्य्यनहिभूप जेदेखथि नहि मोहवश ।
तनिक चोर अनुरूप निद्रित सम धन अन्यहर ११

किञ्च। अप्यऽमात्यसहस्रेऽपि सेनाकोटि वृतोऽपिच।
एकाकी खलु भूपालः स्वयं स्वहित मिच्छति। १२॥
अन्यच्च। नित्यं विनयत स्सर्व्वान् राष्ट्र मुत्सृज्य यत्नतः।
कः सुहृदत्सहजो राज्ञः सर्व्वं कारणबान्धवाः। १३॥
इत्यादि बहुविधं कर्णे जपवचनं वदन्तं स राज्ञा चन्द्रगुप्तेन सुमुक्त्वा ऽवगतः॥
यतः। कार्य्यभारं वहेन्मन्त्री राजा राज्यसुखम्भजेत्।
भारं वोढरि भूपाले सुखभाजन मस्तुकः। १४॥
तत स्तत्र भग्नोद्यमे राजनि मन्त्रिराक्षस मुपसृत्याह। मन्त्रिराट् चन्द्रगुप्तस्त्वां हितकारिणं नजानाति। वणिग्वधूरुवाच॥ नाथ ततो मन्त्री किमुक्तवान्। वणिगुवाच॥ तस्य दुर्ज्जनस्य वचसा वृषले राज्ञि च र्या सन्दिग्धहृदयो बभूव। वणिग्वधूरुवाच॥ कुटिला एव मन्त्रिणः खलवचसाऽपि सन्देह मग्नी कुर्व्वन्ति नाथ वार्त्तेयं संगुप्ता नख्याखति

भाषानुवाद॥

सोरठा।

सेना कोटि समेत सेवक सहसहस जौं।
एकल नृपति सचेत अपनहि करथि सुहित अपन १२॥

दोहा॥

नृपति द्रव्य लयखर्चकर नित्य विनय सों ठीक॥
सहज मित्रकें नृपतिकाँ कारण बान्धव थीक॥१३
इत्यादि अनेक प्रकार कर्ण समीप कथाकरैत तनिकाँ राजाचन्द्र गुप्त तुष्ट कयजानल॥
राजा राज्यक सुख करथि वह तद्भार दिमान।
राज्य भार भूपाल काँ के सुख भागी आन॥ १४॥
ततय नष्ट उद्यम राजा मैं मन्त्रिराक्षस निकट जाय कहल। हे मन्त्रिराज। चन्द्र गुप्त अपनें काँ हितकारी नहि जानें छथि। वणिगवधू कहल। अये नाथ ततय मन्त्री की कहल वणिक कहल ताहि दुर्जन वचन सों कणभरि वृषल राजा मैं सन्देहालु होइत भेलाह। वनिआँक स्त्री कहल। कुटिलामय मन्त्रिलोक होइछथि दुष्टवचनहुसौं सन्देह स्वीकार करै छथि हे स्वामी वार्त्ताई संगुप्त नहिरहति मन्त्रीसौं आत वृत्तान्त सत्ता.

मन्त्रिणा विदिते वृत्तान्ते क्षुद्रबुद्धिसम्बद्धकतया भवानभियोज्यो भविता तदाऽनागतापेक्षां करोतु भवान् क्षुद्रबुद्धेः प्राप्तं स्वकीयपराभवं मन्त्रिणे निवेदयतु ततो मन्त्री क्षुद्रबुद्धिं स्वापकारिणं जानातु इति सकलं परामृश्य वणिग्दम्पतिभ्यां किञ्चिदुपायनमानीय स्वपराभववार्त्ता मन्त्रिराक्षसे निवेदिता राक्षसस्तु क्षुद्रबुद्धौ जातवितर्क एव वणिग्वार्त्तया परमतुष्टोऽब्रवीत् रे सोमदत्त यथा त्वया क्षुद्रबुद्धेः संवर्द्धनं कृतं तथा सकलमहं जानामि तथापि यस्त्वैव नास्ति सकथमन्यस्य हितो भविता अतएव मूलहीनं राजदुर्णयं ममाऽग्रे कथयति ततस्तं वणिजमादाय स मंत्री तां वार्त्तां राजनि विज्ञापयामास राजाऽपि तदाऽऽकर्ण्य क्षुद्रबुद्धेर्व्यलीकं मंत्रिणे कथयामास ततो राजमंत्रिणौ सकरतालं हसन्तौ ब्रूचतुः अहो दुर्जनस्य प्राविण्यं यदाऽऽवयोरपि सौहृद्भेदं चिकीर्षति "मंत्री ब्रूते" येन पितृकल्पस्य पोष्टुरनिष्टमाचरति सोमदत्तस्य स किन्न कुरुते अनेन व्यापारेण जारजोऽयमिति लक्ष्यते तथाहि॥

भाषानुवाद।

क्षुद्रबुद्धि पालन द्वारा अपनहुँ खल संसर्ग दोषभागी भयवेगय तैं भविष्य सुख निर्व्वाहक विचारि कए अपनैं क्षुद्रबुद्धि सों अपनपराभव मंत्री कें निवेदन करु तैं निवेदन सों मंत्री क्षुद्रबुद्धिकें अहाँक अपकारी जानताह ई सभ विचारि वनिआँ दुनू व्यक्ति कतीक दृष्टि सन्देश लय अपन पराभव कथा मंत्रिराक्षकें श्रवण कराओल मंत्रिराक्षस क्षुद्रबुद्धि मैं सन्देहालु छलाहे वनिआँक कथा सों परम हृष्ट होइत भेलाह॥

रे सोमदत्त जेहन तो क्षुद्रबुद्धिक पालन कयलें से हम सभ जनैछी ततय जे तोहरे नहि से कोना आनक हित हयत गय। अतएव मूल हीन राज दुर्नीति हमरा आगा कहै अछि ततय ताहि वनिआं कैं कहलै से मन्त्री से वार्त्ता राजा कां निवेदन कयल। राजा सेहो पुन से से सुनि क्षुद्रबुद्धिक पूर्व्वकथित मन्त्रीकें कहल। ततय राजा मन्त्री करताली दय हँसयित कहल आश्चर्य दुर्ज्जनक प्रवीणता जे हमरहु दुहुगोटा कें सौहृद भेदक इच्छा रखैछ। मन्त्री कहल। जे पितृकल्प पालनकर्ताक अनिष्ट आचरण करैछ सोमदत्तक। सेको नहि करय एहि व्यापारसों जारज ई एहन लक्षित होइछ।

हीने कुलेऽभिजातो भवति कृषोः कातरो भवति।
उपकारिण्यपकर्त्ता न भवति भुवि जारजादितरः॥ १५

राजोवाच। यद्यस्य माता विद्यते तदा निरूपणीय मवद्यं तत्। वणिगुवाच। राजन् माताऽस्य विद्यत एव ततः समुपजातकौतूहलेन नरपतिना तस्य माता ब्राह्मणी परद्वारा धनादिभिः परितोष्य पृष्टा। सा च धन लोभाक्रान्तहृदया यथार्थं कथयामास यत्सत्यं। यदा मम भर्त्ता भिक्षुको भिक्षार्थमन्यत्र गतः तदा तमस्विन्यां रात्रौ युवती निजसद्मन्येकाकिनी ग्रामचाण्डालेनाऽहमुपासा तज्जातोऽयं क्षुद्रबुद्धिः तदाऽऽकर्ण्य। राजोवाच॥ सत्तर्कनिर्णीतवस्तुनि कथमन्यथा भावः सत्यं चाण्डालजातोऽयमेव। वणिगुवाच। देव

मुखं दृष्टं श्रुता वाचः सौन्दर्यञ्च परीक्षितम्।
तदाऽस्याऽभिजनः पृष्टो न मया मुग्धचेतसा। १६॥

राजोवाच। तत्फलं प्राप्तवानसि यतः।

भाषानुवाद॥

दोहा॥

हीन वंश मे जन्म लय कातर कुमति निधान।
अपकर्त्ता उपकारि मैं जारज सौं के आन। १५॥

राजा कहल। जौं एकर माता होयित तखन एकर निश्चय होइत। वणिक कहल। महाराज माता एकर एतहि विद्यमाना ततय उत्पन्न कुतूहल सौ राजा तनिक माता ब्राह्मणी अन्यद्वारा धन आदि सौं परितोष कै पुछलि भेलि से पुन लोभ भरित हृदया यथार्थ कथा कहल जे सत्य जखन हमर स्वामी भिक्षुक भिक्षाय अन्यत्र गेलाह तखन अन्धकारिणी रात्रि मैं समर्था अपन गृह मैं एकाकिनी हम ग्राम चाण्डाल सौं संगृहीता भेलहु तनिक उत्पन्न क्षुद्रबुद्धि। से सुनि राजा कहल। सत्तर्क सौं निश्चित वस्तु मे कोन अन्यथा भाव सत्य चाण्डाल सौं उत्पन्न ई वणिक कहल महाराज॥

दोहा॥

मुख देखल वचनो सुनल देखि सौन्दर्य्य बढाव।
पूछल न तनि अभिजन ततय वनिआं मूढ स्वभाव। १६॥

राजा कहल तकर फल पओलह॥

अङ्गुष्ठमात्रसर्व्वेण वृथा गर्व्वेण पापिना ।
क्षुद्रबुद्धयऽभिधानेन साधु राकुलितो भवान् । १८ ॥

ततो राजा वणिजे क्षुद्रबुद्धिधनन्दापयित्वा परिशिष्टं सर्व्वस्वं स्वय मादाय स क्षुद्रबुद्धि स्सागरपार न्निसारितः

स्कन्धु । भ्रमा त्प्रमादा दपि दैवयोगा न्नाभू त्सतां दुष्टजनै स्समाजः ।
यदुद्भवानां किल किल्बिषाणां प्राणान्तिको निस्सरणप्रकारः ।,१८

इति पिशुनकथा ॥

भाषानुवाद ।

हरिपद ।

अङ्गुठा भरिक छलिक पापी बड़ वृथा गर्व्व पुन धयलक ।
क्षुद्रबुद्धि नामा ई तोहरा साधुकौं आकुल कयलक ॥ १७ ॥

ततय राजा वनिआंकैं क्षुद्रबुद्धिसौं धन देआय अवशिष्ठ जे धन से अपनहि लय
कै क्षुद्रबुद्धिकैं समुद्र पार उतारवाय देल ॥

चौपाई ॥

भ्रमंड प्रमाद दैववश काज ।,नहि हो सज्जन दुष्ट समाज ।
जेहिसौं उदभव पाप अपार । प्रणान्तिक निस्सरण प्रकार ॥ १८ ॥

इतिपिशुन काथ ॥

अथाबुद्धिकथा॥

सुबुद्धिः पुरुष श्रेष्ठः कुबुद्धिः पुरुषाऽधमः।
अबुद्धिः पशुसामान्यो नोत्तमो नाऽधमस्त्वसः।१॥
क्षुधा निद्रा भयं क्रोधः प्रमादो मैथुनं घृणा।
पशुसाधारणा धर्म्मा स्मक्षवन्त्यऽधिया मपि।२॥
अबुद्धि द्विविधः प्रोक्तो जन्मसंसर्गभेदतः।
तावेव सर्व्वकर्म्माणौ लोके वर्व्वरताङ्गतौ।३॥
वर्व्वरस्य कथां श्रुत्वा हसन्त स्सकुतूहलम्।
हेयत्वेनाऽत्र गच्छन्ति शिष्टात्र स्तस्य चेष्टितम्।४॥

तयोः प्रथमं जन्मवर्व्वरकथा प्रस्तूयते। आसीत्कौशाम्बी नाम नगरी तस्यां देवधरी नाम गणकः प्रतिवसति तस्य शान्तिधरो नाम पुत्रो व

भाषानुवाद॥

अथ अबुद्धि कथा॥

दोहा॥

पुरुषश्रेष्ट सबुद्धिहो पूरुषअधम कुबुद्धि।
पशुवत होथिअबुद्धिपुन उत्तम अधम नशुद्धि॥ १

चौपाई।

क्षुधानिन्द भयक्रोध प्रमाद मैथुन घृणा शरीर प्रसाद।
पशु साधारण सम्भव धर्म्म तिहन तुभाक अबुद्धिक कर्म्म॥ २
सेअबुद्धि दुइ भेद कहाव जन्मतथा संसर्ग प्रभाव।
सर्व्वकर्म्म सम छोड़ह जैह जनबर्व्व रता पावथि सेह॥ ३
सुनि वर्व्वरक कथा शिशुलोक बश नहि ह्वनक हसो केरोक।
वर्व्वरचेष्टित सबथिक हेय प्रहस बहुत से मननहि देय॥ ४

ताहि दुहुमें प्रथम वर्व्वरकथाक प्रस्तावना करैछी॥ छलिकौशाम्बी नाम नगरी ताहिमें देवधरनाम ज्योतिषी छलाह॥ तनिकां शान्तिधर नामक बालक छलथिनि

भूव। सच जन्मवर्व्वरः पिचा गुणिनि पुत्रमनोरथेन पाठ्यमानोऽपि पदार्थं न्नाधिगच्छति ॥ तथाहि

पिता ददाति सर्व्वस्वं पुत्रेभ्यः परितोषवान्।
नतु भाग्यञ्च बुद्धिञ्च दातुन्तेनाऽपि शक्यते। ५ ॥

तथाऽपि शोकहृदयप्रत्याशाङ्कुर सकलमनोरथस्थान मेक एव तस्य पुत्रः तेनाऽसौ कर्म्मान्ति पराङ्मुखः प्रतिक्षणं तस्य छायावाही तं पाठयति ततो महता समयेन महता पितुः श्रमेण शुकवदभ्यस्तशास्त्रो बभूव। तमधिगतशास्त्रं कृत्वा गणक श्चिन्तयामास तदेनं पुत्रं राज्ञः परिचितगुणं करोमि यतः

निवेद्यात्म गुणंराज्ञे गुणिनो वसुवाञ्छया।
वेश्या इव भुजङ्गाय व्रजन्ति कृतकृत्यताम्। ६ ॥

भाषानुवाद ॥

ओबालक जनक वर्व्वर पितागुणिसौं पुत्र मनोरथसौं विद्या भ्यास कराओल तथाऽपि यथार्थ पदार्थ नहिजानथि हेतु ॥

दोहा ॥

परितोषें सवपुत्रकां पितादेथि निजवित्त।
भाग्यबुद्धि नहिदयसकथि प्रतिदिन तद्गतचित्त ॥ ५

तथापि शोकहृय प्रत्याशाक यङ्कुर सकल मनोरथ स्थान एकटा वेटा तैं तनि बालक हेतु त्याग कय लय अन्य उद्यम छाया समान संग रहैत पढावथि ततय बहुत दिनें बहुत पिताक श्रमें शुगा जकां पढल शास्त्र ॥

तनिकां पठितशास्त्र जानि ज्योतिषी चिन्ता कयल एहि पुत्र कां राजासौं परिचित गुण करब ॥

करे गुण परिचय नृपति मैं गुणिजन धन लाभार्थ।
वेश्या जन सन सुहृत वस वैषिक विषय कृतार्थ। ६ ॥

ततस्स गणकः राज्ञे तं स्वपुत्रमुपनिनाय तत्पुरोवर्त्तिनं दृष्ट्वा। राजोवाच। अये देवधर गणक किमधीतमनेन तव पुत्रेण। गणकउवाच। गणकशास्त्रमधीतमनेन प्रश्नञ्च जानाति ततोऽद्य देवेन दृष्टो यदि प्रश्नं ज्ञास्यति तदयमध्ययनफलभाजनं भविता तदनन्तरञ्च सकौतुकात् राजा सुवर्णाङ्गुलीयकमेकं मुष्टौ कृत्वा तमुवाच। अये गणककुमार जानीहि तावत् किं वस्तु मम मुष्टौ विद्यते ततो गणकपुत्रः कठिनीमादाय शास्त्रानुसारेण गणयामास गणनया च विदित्वाऽब्रवीत् देव, न जीवो न वा मूलं किन्तु धातुरूपं वस्तु देवस्य मुष्टौ विद्यते। राजोवाच। संवादिनी वाक्। गणकः पुनरुवाच। मण्डलाकृति वस्तु विद्यते राजोवाच॥ सम्वदति वाक् गणकश्च पुनरब्रवीत गुरुद्रव्यं मध्ये शून्यञ्च भवति। राजोवाच। साधु गणककुमार भद्रं जानासि कथय कथय, ततो राजप्रशंसाजातरभसः पुलकितबाहुमूलः स्त्वरितं कथयामीति गणनामपहाय निजोत्साहेन कथयामास, देव, पाषाणघरट्ट कमण्डलो वि

भषानुवाद।

तनिकों ततय सँ गणक राजपरिचयार्थ राजा निकट संप्राप्त कयल। तनिका पुरस्थित देखि राजा कहल अओ देवधर कोन शास्त्र अध्ययन कयलै छथि अहाँक पुत्र। ज्योतिषी कहल गणित शास्त्र अध्ययन कयलय छथि प्रश्न सेहो जनैछथि। ततय अपनैक दृष्ट जौं ई प्रश्न जानताह तौं अध्ययन फल भाजन होयताह गय। तदनन्तर कौतुक सहित राजा सुवर्णक अङ्गुठी मुष्टि मैं राखि पूछल। अओ देवधरकुमार कहु की वस्तु हमरा मुठी मैं अछि। ततय गणकपुत्र कलम लय शास्त्रानुसार सौं गणित करय लगलाह गणना सौं बूझि कहल। हे महाराज नहि जीव नहि मूल किन्तु धातुरूप वस्तु अपनैंक मुष्टि मैं थीक। राजा कहल समीचीन कथा। गणक कुमार पुन कहल मण्डलाकार वस्तु अछि। राजा कहल सत्य कहैछी। गणक पुन कहल गुरुद्रव्य ओ मध्यशून्य सेहो अछि" राजाकहल"साधुगणक बालक उत्तम जनैछी कहु कहु" ततय राजाक प्रशंसा सौं उत्पन्न रभस पुलकित भुजमूल भौ पूकारव ई बुद्धिसौं गणना छोड़ि स्वकीय उत्साहसौं कहयितभल "हेमहाराज"जात

द्यते दैवस्य मुष्टिगर्भे, राजा विहस्योवाच । रे गणक तव पुत्रः शास्त्रे कृताभ्यासोऽस्ति किन्तुबुद्धिः यावद् रे शास्त्रानुसारिण्या गणनयाऽभिहित मनेन तावति दूरे सम्वाद एव जातः यत्स्वकीयोहेनोक्तं तस्य विसम्वादो वृत्तः किमधिकं रे गणकपुत्र त्व ज्ञानात्वे व यन्मानुषमुष्टिगर्भे चरद्रुमपण्डली न माति ततः कथ मव्याप्तिमूलकएवायं तर्कस्तव चेतसि पदं लेभे तस्मा दवश्यं बुद्धिहीनो सीत्यभिधाय राजा तम ज्ञातवान् । तथाहि ॥

गुरून्निषेव न्नपि जीवनावधि भ्रमन्धरित्री मपि यावदम्बुधि ।
अधीत्य शास्त्राण्यपि चिन्तयन्मुहुर्धिया विहीनो नहियाति धीरताम् ।९

॥ इति जन्मवर्व्वरकथा ॥

भाषानुवाद ।

विद्यमान अपनेक मुष्टिमें "राजा हर्षित कहल "रे गणक तोहर पुत्र शास्त्रमें कयल अभ्यास किन्तु अबुद्धि यावत् पर्यन्त शास्त्रानुसार गणनासों कहल तावत सत्य समीचीन जे अपन तर्कसों कहल सैह विसम्वाद वृत्त "की अधिक रे गणकपुत्र तोंह जनैत छह जे मानुषक मुष्टि अन्तर जांत कतहु अटि सकैछ ततय कोना अव्याप्ति मूलक ई तर्क तोहरा मनमें स्थान् कयलतैं अवश्य बुद्धि विहीन छह ईकहि राजा तनिक अवज्ञा कयल हेतु ।

चौपाई

सकलजन्म गुरुसेवन करथि यावत जलनिधि धरणी फिरथि ।
चिन्तितशास्त्र सकल पढिआय बुद्धिहीन धीरत्व नपाव ॥९

इति जन्मवर्व्वरकथा ॥

अथ संसर्गबर्व्वर कथा ॥

हीयते हीनसंसर्गा द्बुद्धिमानपिमानवः ।
गवां संसर्गदोषेण गोपो भवति वालिशः । १ ॥

आसी त्पुरा गण्डकीसन्निधाने प्रचुरतृणाङ्कुरा काऽपि महती स्थली तस्यां गोपजीविनो बहवो गोपा सपरिवारा वसन्ति तेषा मेको गोप शलभनामा जात स्तत्रैव वर्द्धमानः अदृष्टपुरव्यवहार एव युवा बभूव एकदा तस्य मातरं जरतीं गोपीं रुजा पीडितां दुर्व्वला न्दृष्ट्वा । गोप वृद्धा ऊचुः ॥ अयी शलभ तव माता जरती त्वदेकगतिः कथं दुर्व्वला कथ मेनान्न पुष्णासि पोषणसाध्यं हि वृद्धानां शरीरसन्धान न्तदस्याः पोषणं सावधानः कुरु शलभस्तु मातृस्नेहपराधीनो गोपोषण एव पोषणपदार्थ व्युत्पन्नो घोषएव दृष्टपरिपाटिः गोपुच्छलोमविचित्रितशणरज्जुदाम्ना ज

भाषानुवाद ॥

अथ संसर्गवर्व्वरकथा ॥

दोहा ।

हीनजनक संसर्गसौं हीन होथि मतिमान ।
गोप गाय संसर्गसौं बालक सम अज्ञान ॥१

छलि पूर्व्व गण्डकी नदी निकट बहुत घास अङ्कुरवती कोनो महती स्थली ताहिमें गोप जीविलोक बहुत गोप परिवारसहित बसथि ताहिमे एकगोप शलभ नामक ततहि उत्पन्न ततहिबढलाह पुरव्यवहार देखलहिनें युवा होइतभेलाह एकसमय तनि गोपक माता वृद्धा व्याधिसौं पीड़िता दुर्व्वला देखि गोपवृद्ध लोकसब हो शलभ तोहर माता वृद्धा एकगति तनिकां तोंही कियैक सेदुर्व्वला" कियक नहि हिनक पालन करैछह पोषणसाध्य वृद्ध लोकक शरीर सन्धान तैं हिनक सावधानसौं पालनकरह ॥ शलभपुन ॥ माताक स्नेह पराधीन गोपालन सैंह पालन पदार्थ व्युत्पन्नगोष्ठसैंह देखल परिपाटी गोपुच्छकेश चित्रित

रतीं मातरं गले बद्धा करीषाग्निधूमवहनं कुर्व्वाणो घासकवलप्रदानेन तस्याः पोषणपरायणो बभूव साच तन्माता वराकी जरती तथा पराभव मनु भवन्ती कण्ठगतप्राणा कृतार्त्तनादा त्रायतां गोपा स्त्रायता मित्युच्चै रुवाच । ततः प्रवेशिगोपैरागत्य बन्धना त्तामुक्ता तत्पुत्रश्च निर्भर्त्सितः । तथाहि ।

अन्येषां साहचर्य्येण पिवत्यश्नाति गच्छति ।
क्वापि तिष्ठति निर्बुद्धिः जीवनाऽदृष्टजीवितः ॥ २ ॥

॥ इति संसर्गवर्व्वरकथा ॥

इति समस्तप्रक्रियाविराजमानरूपनारायणेत्यादिरुठक्कुरविद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां बुद्धि परिक्षायको नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥

भाषानुवाद ।

अधाक रज्जुसौं वृद्ध माताका गरमें बांधि करसीक अग्निक धूम दय घास भोजन दानसौं तनिक पालन परायण भेलाह सेपुन तनि गोपक माता बेचारी वृद्धा तेहन पराभव अनुभव करैत कण्ठगत प्राणाकयल आर्त्तनाद आहि२ रे गोप ईउच्चस्वरै कहल तदन्तर परोसी गोप लोक आबिबन्धन छोड़ायोल तनिका पुत्रके बहुत गञ्जनकयल हेतु ॥

दोहा ॥

पिवथि खाथि चलथी करथि साहचर्यपुन आन ।
जीव जीवना दृष्टसौं वैनिर्बुद्धि समान ॥ ३

इतिसंसर्गवर्व्वरकथा ॥

अथ पुरुषपरीक्षातृतीयपरिच्छेदः ॥

अथ राजा पारावारः पुनः पृच्छति मुने सुबुद्धिकथा तावदाऽऽकर्णिता सम्प्रति सविद्यकथां श्रोतुमिच्छामि मुनिः कथयति । तद्यथा ॥

सविद्यस्य कथां श्रुत्वा विद्यासु वलते मनः ।
विद्याभ्यासपरस्यापि यशश्च पुण्यञ्च जायते ॥ १
सविद्यो विद्यया युक्तस्ताश्च विद्याश्चतुर्द्दश । *
प्राधान्यन्तु तयोस्तासां विद्यानां शस्त्रशास्त्रयोः ॥ २
उत्तमापि धनं विद्या दीयमाना न हीयते ।
राजदायादचौराद्यैर्ग्रहीतुन्नाऽपि शक्यते ॥ ३

भषानुवाद ।

अथ राजा परावार पुन पुछल हे मुनि सुबुद्धिकथा सुनल सम्प्रति सविद्यकथा श्रवण क इच्छा मुनि कहइत छथि ॥

चौपाई ॥

सुनि सविद्य कथा मन लाय । विद्या मध्य पौष मन जाय ॥
विद्याभ्यास निरत मन रखइ । यश सुपुण्य कोँ पावथि सइ ॥ १
विद्यायुक्त सविद्यक नाम । विद्या पुन चतुर्द्दश ठाम ॥ *
विद्या मेँ दो युगल प्रधान । शस्त्र शास्त्रक कोँ उत्तम ज्ञान ॥
जानब विद्या रत्न अनूप । छीनि न सकथि महाबल भूप ॥
क्षीण होय नहि देलहु दान । चोर चोराबय जेन निदान ॥ २ ॥

* अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः । पुराणं धर्म्मशास्त्रञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्द्दश ॥ मतान्तरे विद्या अष्टादशविधाऽपि । षडङ्गाश्च चतुर्व्वेदो मीमांसान्यायविस्तृतिः । आयुर्व्वेदो धनुर्व्वेदो गान्धर्व्वं चार्थशासनम् । पुराणान्धर्मशास्त्रं च विद्या अष्टादश स्मृताः । अङ्गानि तु । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां क्रमः । छन्दसां विचितिश्चैव षडङ्गो वेद इष्यते ॥

पुरुषं साहसक्लेशा दुर्ज्जनायासकारिणम् ।
लक्ष्मी र्विमुञ्चति काऽपि विद्याऽभ्यस्ता न मुञ्चति ॥ ४
किन्तस्य मानुषत्वेन बुद्धि र्यस्य न निर्म्मला ।
बुद्ध्याऽपि किंफल न्तस्य येन विद्या न सञ्चिता ॥ ५
सविद्यः पुरुष श्श्रेष्ठो यत्र कुत्राऽपि तिष्ठति ।
तत्रैव भवति श्रीमान् पूजा मच्छति भूभुजाम् ॥ ६
आसङ्गोऽधीति रभ्यासो वेतृता शक्ति रेवच ।
चत्वारो मुनिभिः प्रोक्ता विद्योपायाः पुरातनैः ॥ ७
पङ्किले पामरग्रामे पुरे पिशुनसेविते ।
राष्ट्रे चाऽविज्ञ भूपाले सविद्य स्त्रिषु सीदति ॥ ८
शास्त्रविद्य श्शास्त्रविद्यो लोकविद्य स्तथैवच ।
सोपविद्यश्च चत्वार स्सविद्याः परिकीर्त्तिताः ॥ ९

तत्रादौ शास्त्रविद्यकथा तावत्प्रस्तूयते ।

भषानुवाद ॥

साहसि केशि अर्जनायास । त्याग रमा मनमे गुणि त्रास ।
विद्या अभ्यस्ता त्याग न करथि । जन्मजन्म सङ्गहि संचरथि ॥ ४ ॥
बुद्धि निर्म्मला हो नहि जकर । मानुषत्व पुन की भेल तकर ॥
बुद्धि प्राप्ति तौं की फल भयल । विद्यारत्न न संचय कयल ॥ ५ ॥
विद्या युक्त पुरुष जत जाय । ततहि सुखी श्रीमान कहाय ॥
भूपति सौं आदर बड़ गोट । विद्यारत्न मूल्य नहि छोट ॥ ६ ॥

चौपाई ॥

सुमुनि पुरातन कहल बुझाय । चारि विचारक विद्योपाय ।
एक आसङ्ग औ दूसर अधीति । अभ्यास वेतृता शक्ति सुरीति ॥ ७
पंकभरल खल पामर ग्राम । पिशुन सहित परभल नहि ठाम ॥
राज्य अविज्ञ महीपति जतय । तिनिहि सविद्य खिदयुत ततय ॥ ८
से सविद्य छथि चारि प्रकार । शास्त्रविद्य एक नामोचार ॥
शास्त्रविद्य पुन नाम कहाव । लोकविद्यसे संज्ञा पाव ॥ ९
सोपविद्य हो चारिम भेद । एते सविद्य कहाव अखेद ॥

ताहि आदिमे शास्त्रविद्यक प्रस्तावना करेकी ऊँ हेतु ॥

यत । स्वभावा कृत्स्नविद्याया अशास्त्र विद्या कनीयसी ।
अस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते ॥ १०
तद्यथा । यस्समस्तेषु शास्त्रेषु कृताभ्यासोऽपि तत्ववित् ।
शस्त्रविद्य समाख्यात सोऽस्त्रव्यापारपारगैः ॥ ११

बभूव धारा नाम राजधानी तत्र विवेकशर्म्मणः पुत्रो निर्व्विवेको नाम ब्राह्मणः प्रत्युवास सच वेदाऽध्ययनपराङ्मुखः स्वाचारनिरपेक्षो व्याधसमाजेन मृगयारसिको बभूव कदाचि देकदा मातु रन्वयेन मृग वधार्थं मरण्य न्न जगाम गृहाङ्गणे निषिक्षः पुर एव देवकुलकोटरे क पातः पारावता न्दृष्ट्वा चिन्तयामास यदिद न्देवकुल मारुह्य पारावत शावकान् पातयामि तथाहि ॥

भाषानुवाद ॥

रूपमालाछन्द ॥

शास्त्रविद्या सों विचारैं शस्त्रविद्याश्रेष्ठि ।
रचल भल संसार परमानन्द सौं परमेष्ठि ॥
राज्य रक्षित शस्त्रसों तों शास्त्रचिन्तावृद्धि ।
विप्रतम भपाल का हो उभय विद्यासिद्धि ॥१०

दोहा

अभ्यासी सब शास्त्रमें तत्वक वेत्ता जेह ।
शस्त्र विद्याविख्यात हो वीर पुरुष सौं सेह ॥११

छलि धारा नाम राज धानी ततय विवेक शर्म्माक पुत्रनिर्व्विवेक नामक ब्राह्मण वसथि से वेदाध्ययन रहित स्वाचार सों विहीन व्याध समाज सौं शिकार रसिक होइत भेलाह कदाचित् एक वार माताक अन्वयसौं मृगवधार्थ जङ्गल नुहि गेलाह निजाङ्गणस्थ सौं समीपहि देवमन्दिर कोटर मैं कूषितकपोत देखि चिन्ता कयल जौं ई देवगृह चढि कपोत वचा पातित करी हेतु ॥

कामुको न विना स्त्रीभि र्न खलः खलतां विना ।
न विना हिंसया हिंस्रः सुखं कुत्राऽपिजायते ॥ १२

तत स्तत्राह्मणः पारावतशावकार्थी देवकुल मारुह्य कोटरे निःक्षिप्तहस्तः कोटरस्थं सर्प्पं धृत्वा कपोतशावकभ्रमेण चकर्ष कोटरा दाक्ष्टेन तेन सरीसृपेन वेष्टितबाहुः स परमचस्त श्चिन्तयामास यदहं सर्प्पमत्यज न्नेकहस्तावलम्बेन देवकुला दवरो ढुन्न शक्नोमीति त्यजंश्च सर्प्पेणै व दष्टव्योऽस्मीति तत्किमिदानीं करवाणि तदनन्तरं सङ्कटपतित उच्चै रार्त्तरव ञ्चकार चायतां मां लोका इति प्रोवाच दुर्ब्बुद्धिः ॥

ज्ञातदोष मनादृत्य व्यसनेषु प्रवर्त्तते ।
कुधीःकातरता य्याँति लब्ध्वा व्यसनजं फलम् ॥ १३

भाषानुवाद ।

दोहा ।

नहि कामी स्त्रीगण विना खलता बिनु खल लोक ।
नहि हिंसक हिंसा विना सुख की पाव अशोक ॥ १२ ॥

ततय से ब्राह्मण पारावतक सन्तति ग्रहणार्थ देवमन्दिर ऊपर चढि कोटर में प्रवेशित कयल हस्त ततय कपोतक बच्चा भूलैं कोटरस्थ सर्प्प क ग्रहण कय निस्सारण प्रयत्न कयल तथा विष सर्प्प झनि ब्राह्मणक बाहु मैं लपटि गेल से परम भीत चिन्ता करयित भेलाह जौं सर्प्प सहित देवगृह ऊपर सौं एक हस्तावलम्बसौं उतरि नहि सकैछी जौं सर्प्प त्यागि दिव तौं अर्द्दित कुपित सर्प्प अवश्य डसत ततय की सम्प्रति करब तदनन्तर संकट पड़ल उच्चस्वरे आर्त्तनाद करयित भेलाह त्राण करह हमर हे नगर लोक ई कहयित भेला दुर्ब्बुद्धि ॥

दोहा ।

ज्ञातदोष किछु मान नहि व्यसनहि मैं अतिप्रीति ।
पावि व्यसन फल कुमति जन कातर होथि सभीति ॥ १३ ॥

तदीय मार्त्तरव माकर्ण्य लोका वर्त्तुली बभूव पश्चात्तां कथां श्रुत्वा भोजदेवोऽपि ब्राह्मणरक्षार्थी तत्राऽऽजगाम तदनन्तरं सर्व्वै र्विचिन्त्यमानोऽपि ब्राह्मणरक्षाऽक्षमः शीघ्रतया कश्चिदुपायेन निर्द्धारितः तस्योच्चतरस्याऽभ्रंलिहशिरसो देवकुलस्यैकहस्तमात्राऽऽलम्बेन स्थितं सन्दिग्धजीवितं ब्राह्मणन्दृष्ट्वा करुणार्द्रहृदयो भोजदेवो राजा सर्व्वाना ऽऽदिदेश रे रे लोकाः कश्चिदस्ति युष्माक म्मध्ये कोऽपि यएनं ब्राह्मणं त्रायते सुवर्णलक्षं गृह्णाति यस्य प्रयुक्त्या पराक्रमेण वा ब्राह्मणोऽयं कुशली देवकुला दवतरति तस्मै निश्चित महं लक्षं सुवर्णानि दास्ये । तदा ऽऽकर्ण्य सिंहलनाम्ना केनाऽपि राजपुत्रेण धनुर्व्विद्याविचक्षणेनोक्तम् देव ब्राह्मणरक्षार्थं महती प्रयुक्ति र्न कर्त्तव्या अहं मल्पेनैवाऽऽयासेन ब्राह्मण मवतारयिष्यामि ततो ब्राह्मण स्तावदिदानीं सर्प्पवेष्टितं बाहुं स्तब्धं कृत्वा दर्शयतु तथाकृतवति ब्राह्मणे राजपुत्रः कोदण्ड माकृष्य सन्धानं विधाय नाराचचक्रेण सर्प्पस्य शिर श्छिच्छेद यथा छिन्नं सर्प्पकलेवरं भूमौ निपपात ब्राह्मणकरे कुशपत्रधाराग्रसमानाऽपि लेखा

भाषानुवाद ॥

तनिक आर्त्तनाद शुनि लोक ततय बहुत एकत्र भेल पाश्चात कथा भोज देवशुनल अपनहु ब्राह्मण रक्षार्थं ततय सम्प्राप्त भेलाह ततय सर्व्वजन चिन्तित ब्राह्मण रक्षामें अक्षम शीघ्रता सौं कोनो उपाय नहि निश्चय पश्चीलक अत्युच्च देवगृह ताहिपर एक हस्तावलम्बस्थित जीवन सन्देह ब्राह्मण काँ देखि भोजदेव राजा सर्व्वजन काँ आज्ञा देल अरेलोक तोहरासवहि मध्य के ओ अछि जेहन जे एहिब्राह्मणाक त्राणकरय एकलक्ष सवर्णसे पाओत जकर युक्तिसौं पराक्रम सौं वा ब्राह्मण ई कुशल क्षेमसौं देवगृह ऊपर सौं उत्तारथि तनिका निश्चय एक लक्ष सुवर्ण हम देव । से शुनि सिंहल नामक एकराज पुत्र धनुर्व्विद्या पण्डित कहल हे महाराज ब्राह्मणरक्षार्थं वृहत प्रयास नहि कर्त्तव्य हम अल्पहि परिश्रम सौं ब्राह्मण काँ उतारि लेव ततय ब्राह्मण तावत एखन सर्प्प वेष्टित बाहुस्तब्धित कय देखावथु तेहन कयल ब्राह्मण ओ राजपुत्र धनुष आकर्षण कय लक्षस्थिर बनाय शरचक्र सौं सर्प्पक शिरश्छेद करयित भेलाह जेना छिन्न सर्प्प शरीर भूमि मे खसयित भेल ब्राह्मणाक हस्तमें कुश पत्राग्र समानो रेखा नहि भेलि ॥

न भूता पश्चा त्करस्थितं सर्पफणां परित्यज्य लब्धस्वास्थ्यस्ति र्ब्राह्मणो देव कुलात्पूर्व्ववद्देवाऽऽततार राजा तं राजपुत्रं स्वीकृतसुवर्णलक्षं दत्वा प रैश्च वासःप्रभृतिभिर्व्बहुभिः स्तुतिभि स्तोषयामास ॥

प्रश्नोकस्तु ब्राह्मणस्य कृतारक्षा लब्धं लक्षञ्च काञ्चनम् ।
राज्ञा चाऽभ्यर्च्चितो बाहु र्व्विद्यया किन्न लभ्यते ॥ १७

इत्यस्त्रविद्यकथा ॥

भाषानुवाद ।

पश्चात् हस्तस्थिता सर्पफणा परित्यागि प्राप्त स्वास्थ्य ब्राह्मण देवमठ सौं पूर्व्ववत् उतरयित भेलाह राजा ताहि राजपुत्रकाँ पूर्व्वाङ्गीकृत सुवर्णलक्ष दय अन्यवस्त्रादि सौं बहुत स्तुतिसौं सन्तुष्ट करयित भेलाह ।

दोहा ।

रक्षाकयलनि ब्राह्मणक पयोलनि कांचन लक्ष ।
अर्च्चित बाहु महीपसौं विद्या विभव प्रतक्ष ॥

इतिअस्त्रविद्याकथा ।

अथशास्त्रविद्यकथा ॥

अधीत्य चाऽर्थं विज्ञाय पारग स्तर्कशास्त्रयोः ।
शास्त्रेण विद्यया ख्यातः शास्त्रविद्यः स उच्यते ॥ १

आसी दुज्जयिन्यां पुरि विक्रमादित्यो राजा एकदा कश्चि द्देको ब्राह्मणः शिरोवेदनाग्रस्त स्तस्य द्वार माजगाम । ब्राह्मणउवाच । देव

अत्याज्यं हि व्रतं राज्ञः प्रजानां परिपालनम् ।
दुर्गतव्याधितार्त्तानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ १

ततो मां दुर्गतं व्याधिपीड़ितं ब्राह्मणं परिचायता न्देवः । राजा तं ब्राह्मण न्तथाविधं दृष्ट्वा करुणार्द्रहृदयः किं मत्र भविष्यतीति जिज्ञासु र्वराहनामानं ज्योतिश्शास्त्रविदं प्रत्य ब्रवीत् हे वराह कच्चिदयं ब्राह्मणो जीविष्यति । वराहउवाच । अकृतमद्यपान एव निरुगभविष्यति जीविष्यति च ॥

भाषानुवाद ।

शास्त्रविद्यकथा ।

दोहा ।

पढ़ितर्थ में ज्ञानरह तर्क शास्त्रमें दच्छे ।
शास्त्रविद्यतिकांबुझव विद्या सौं सब लच्छ ॥१

छलछथि उज्जयिनी परीमें विक्रमादित्य राजा एक समय हुनको एक ब्राह्मण शिरो वेदना व्याकुल तनिकद्वार अवयित भेलाह ब्राह्मण कहल हेमहाराज ।

शोरठा ।

नृपतिक थिक अत्याग प्रजा पालनाह्नपवृत ।
अतिशय द्विज अनुराग दुर्गत व्याधित आर्त्तमें ॥२

ततय दुर्गत व्याधि पीड़ित हमरब्राह्मणक त्राण करु हेमहाराज तनि ब्रह्मणाका तेहन देखिसकरुण हृदय कीएतय भावी ई जिज्ञासार्थ वराह नामक गणितशास्त्रवेत्ता कांपर्छायित भेला हेवराह ई ब्राह्मण ई व्याधि सौं बचताह वराह उत्तर देल विनाम द्यपान कयलेहि व्याधिरहित भौ जिवता हेपुन ॥

पुरुषायुषं तदाऽऽकर्ण्य राजा चिन्तयामास अहो शास्त्रदृष्टि रसौ किं ब्रूते कथ मप्रभक्तं निषेधयति ब्राह्मणस्य कथं मद्यपानप्रसङ्गः भवतु तावत् पश्यामि ततो राजा हरिश्चन्द्रनामानं भिषज माहूयाऽऽदिदेश भोः कोऽस्य व्याधिः का चिकित्सा । भिषगुवाच ॥ देव व्याधि र्ब्रह्मकीटः प्रतिक्रिया नास्त्येव । राजोवाच ॥ व्याधे र्भेषज न्न कृतं विधिने त्यऽसम्भा व्यं । भिषगुवाच । देव व्याधे रस्याऽपि भेषज मस्ति किन्तु ब्राह्मणस्य न देयम् राजोवाच। किन्तद्भेषजं,भिषगुवाच । ब्रह्मकीटः शिरसि गोद्र मस्य चरति तेनाऽयं वेदनाविह्वलो दृश्यते ब्रह्मकीटो नाऽग्निना दह्यते न लौहेन छिद्यते न जलेन क्लिद्यते केवलं मद्येन म्रियते तन्मदिरैवा ऽस्य भेषजम् । राजा कर्णौ स्पृष्ट्वाऽब्रवीत् आः शान्तं पापं ब्राह्मणस्य मदि रा दातव्या। भिषगुवाच । तया विना ब्राह्मणो न जीविष्यतीति निर्णयः राजा परमधार्म्मिकः परमदुःख च्चिकीर्षुः प्रवरस्वामिनामान माचा र्यं धर्म्मशास्त्रविद माहूय पृष्टवान् अये किं मत्र विधेय भवति । आचा

भाषानुवाद ॥

पुरुषक आयु ततय शुनि राजा चिन्ता करयितभेलाह आश्चर्य शास्त्रदृष्टि ई कोवजै छथि कोना अप्राप्तिक निषेध करैछथि ब्राह्मण कां कोन तरह मदिरा पानक प्रसङ्ग हो तावत देखै छी । ततय राजा हरिश्चन्द्र नामक वैद्यकां अनवाय आज्ञा शुनाओल । अओ कोन्हि क व्याधि की औषध । वैद्यकहयित भेला हे महाराज व्याधि ब्रह्मकीट औषध उपाय नहिए । राजाकहल व्याधिक औषध नहि कयल विधाता ई हो असम्भव । वैद्य कहयित भेला हे महाराज एहि व्याधिक औषध तौं अछि किन्तु ब्राह्मणकां देवक योग्य नहि । राजा कहयितभेला कोन वस्तु । वैद्यकहल । ब्रह्मकीट मस्तकमें छिनक मांस खाइ अछि तेहिसौं ई वेदना विह्वल देखल जाइछथि ब्रह्मकीट नहि अग्नि सौ दग्ध होइछ नहि लोह अस्त्रसौं काटल जाइछ नहि जलमें संकुचित होइ अछि किन्तु केवल मद्यसौं मरैछ तें मदिरामात्र एहि व्याधिक औषध राजाकानपर हाथदय कहय लगलाह आः शान्तपाप ब्राह्मण कां मदिरा देव । वैद्यकहल । ताहि विना ब्राह्मण जीवो नहि करता सेहो निश्चय । राजा परम धार्मिक परदुःखहरणैंका सौं प्रवरस्वामि नाम आ

र्य्य उवाच। अथाऽसाध्ये व्याधिप्रतीकारे मद्यपानैकसाध्यायां ब्राह्मण
स्य प्राणरक्षायां यदि वैद्यो निश्चितज्ञानोऽस्ति तदाऽस्य प्राणरक्षार्थिनो
ब्राह्मणस्य मद्यपानेनाऽपि न पातित्यम्॥ वैद्य उवाच। यद्ययमुपायान्त
रेण जीवति ब्राह्मणो मदिरापानेन न जीवति तदाऽहं पातकी भवामि
ततो राजा तयोरपि स्वस्वशास्त्रसिद्धान्तद्रढिमं श्रुत्वा ब्राह्मणाय मद्यमा
नु मादिदेश तच्चोपनीते च मद्ये तदानी माकाशे वागभवत् रे-शवर
मा साहसं कार्षीः। तदाऽऽकर्ण्य शवरस्वाम्युवाच। पिव रे ब्राह्मण म
द्यं वाग्देवतेयं वर्णपदवाक्योपनयमात्रकुशला किञ्जानाति धर्म्मस्य नि
ष्कर्षम्। तदनन्तरं शवरस्वामिनः शिरसि पुष्पवृष्टि र्ब्बभूव तया पुष्प
वृष्ट्या श्रद्धालु सभासद सहितो राजा शवरस्वामिनो वचन मादृत्य
ब्राह्मणाय मद्य न्दापयामास ब्राह्मणं स्त्वाजन्मनो मद्य मपेयतया ऽवग
त म्पातु मुद्यतोऽपि निश्वासाकृष्टे न मद्यगन्धेन परमव्याकुलो वभूवपश्चा

भषानुवाद।

चार्य्य धर्म्म शास्त्रवेत्ता का वजाय पुछयितभेलाह। ऐ धर्म्मज्ञ की एहि स्थल कर्त्तव्य। आचार्य्य कहयितभेला। अथ असाध्य व्याधि प्रतीकार विषय मद्यपानहि मात्र साध्यमे ब्राह्मणक रक्षामें जौं वैद्य निश्चित ज्ञानकथितौं हिनका प्राण रक्षार्थीक ब्राह्मण कौं मद्यपानक्ष सन्ता नहि पातित्य।

वैद्यकहयितभेला। जौं उपायान्तरसौं ब्राह्मण ज़ीवथि मदिरा पानसौं नहिजीवथि तखन हम पात कीहोइ ततय राजा तनि दुनू गोटाक अपन२ शास्त्रदृढता शुनि ब्राह्मण का मद्य पिवक आज्ञा दयित भेलाह ततय मद्य ब्राह्मणक निकट प्राप्त सन्ता ततय तखन आकाश वाणी भेलि। रेशवर साहस नहिकर से अकनाय शवर स्वामी कहल पिवरे ब्राह्मण मदिरा वाग्देवता ईवर्ण पद वाक्यक उपनय कुशला कीजानती धर्म्म तत्व। तदन्तर शवर स्वामि ऊपर पुष्पवृष्टि भेलि तेहि पुष्पवृष्टि सौं समाज सहित श्रद्धालु राजा शवर स्वामिक वचन आदर कय ब्राह्मणार्थ मदिरा देआ दयित भेला। ब्राह्मण पुन आजन्म सौं अपेयत्व मद्यजानि पान उद्यत सन्तानिश्वासास सौं आकृष्ट मद्दगन्ध सौं परम आकुल होयित भेलाह पश्चात् ब्राह्मणक मस्तक सौं मदिरागन्ध पराभूत ब्रह्म कीट नासिका

तस्य शिरसो मदिरागन्धपराभूतो मच्छकीटो नासारन्ध्रेण भूमौ निपपात निपतितञ्च कीटं वैद्यवचनपरीक्षाकुतूहली वह्नौ निक्षिप्तेप ततो वह्निक्षिप्त मदग्धं वारिणि प्रवेशित मस्तिमितं कीटं लौहदारित मदीर्णं मदविन्दुना विलीनं दृष्ट्वा सर्व्वे साश्चर्य्या बभूवुः । राजोवाच । भो वैद्य कीदृश स्ते शास्त्रनिश्चयः यतस्त्वया मद्यपान मुपन्यस्त म् । व्याधि स्तु मदगन्धे नैवाऽपहृतोऽभूत् । वैद्यउवाच । देव यदि गन्धग्रहण मेवोपन्यस्तं स्या त्तदा विना पानासङ्गेन ब्राह्मणस्याऽन्तप्यातो नस्या न्मदिरागन्धग्रहणेन ततो मया पान मुपन्यस्तम् । राजोवाच । साधु वैद्य साधु । सभासदऊचुः । देव साधूक्तं हरिश्चन्द्रवराहाभ्यां तदुभयमप्यनुभव मेव जातं शवरस्वामिनाच* सुरमण्डली विरचित पुष्पवृष्टिसाक्षिक मेव साधूक्तम ततः स्वस्वशास्त्रसिद्धान्तविद एवाऽमी त्रयोऽपि । तथाहि ॥

भाषानुवाद ।

रन्ध्रद्वारा भूमिमे निपतित भेल । तथाविध कीट कांपुन वैद्य वचन परीक्षा कुतूहली अग्निसंयोजित करवाओल ताहिसों दग्ध नहिभेल जलमे निक्षिप्त सन्ता नहि संकुचित गात्र भेल लोह पस्त्रसों छिन्ननहि भेल मद्यविन्दु सों गलित भेल । सेदेखि सवलोक आश्चर्य्य मानल । राजा कहयितभेला । अयो वैद्य केहन अहांक शास्त्र निश्चय अहांकहल केवल मद्य पान भाव औषध व्याधि तौं मद्यगन्धहि छूटल । वैद्य कहयितभेला । हे महाराज जों गन्ध ग्रहण उपन्यास होयित तों विना पानक आसङ्गत ब्राह्मणक अन्तःपात नहि होइत केवल मदिरागन्धक ग्रहण सों ततय हम मद्य पान उपन्यास कयल । राजाक हर्षित भेला । साधु वैद्य साधु । सभास्थ लोककहयित भेला । हेमहाराज समीचीन कहल हरिश्चन्द्र ओ वराह । तनि दुनु वचन में प्रत्यक्ष प्रमाण ।

*ब्राह्मण्या मभव द्वराहमिहिरो ज्योति र्व्विदामग्रणी
राजा भर्त्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत् ।
वैश्यायां हरिचन्द्रवैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती
शूद्राया ममरः षडेव शवरस्वामिद्विजस्याऽऽत्मजा ॥ १

शवरस्वामिनोनाम आदित्य देवः । शवररूपेण बौद्धभयेनवने वासतया शवरेतिनाम्ना प्रसिद्धोऽभूत् ॥

धन्य स्त्वं नृपति र्वरा भगवतो धन्यैव धन्या पुरी
धन्या सर्व्वगुणान्वितैः सुकृतिभि र्दृष्टा तवेयं सभा ।
एभैषज्यबुधो यथार्थवचन स्सन्देहनिर्णायको
यत्राऽयं भिषगेष यत्र गणको यत्रैष मीमांसकः । ३ ॥

ततो राज्ञा जाताऽहङ्कारपुलकेन परमोत्साहचेतसा त्रयोऽपि शास्त्रविदः काञ्चनैः करिभि स्तुरङ्गै र्व्वासोभिश्च पूजितः । तथ स्वायत्तसिद्धे र्नृपस्योपकरणानि बभूवुः । स ब्राह्मणोऽप्युल्लाघितः सुवर्णै रदरिद्रो कृत्य गृहम्प्रहितः ।

॥ इति शास्त्रविद्यकथा ॥

भाषानुवाद ॥

अवर स्वामी पुन देवताकृत पुष्पवृष्टि साक्षि सों समग्र कहल ॥

चौपाइ ।

अपने धन्य थिकहु महिपाल धरणी धन्या पुन एहि काल ।
पुरी सभा ई धन्या थीकि दृष्टा-सुकृति पुरुष सों नीकि ।
वैद्य गणक मीमांसक दृष्टि दैव दृष्टि थिकि छिनकर दृष्टि ।
एहन २ बुधजन बस जतय किछु अलभ्य सम्प्रति की ततय ॥ ३

ततय राजा उत्पन्न अहंकार सों पुलकित परमोत्साह मनसों तीनू पण्डित कां सुवर्ण हाथी घोड़ा वस्त्रादिसों पूजित कयल तनि स्वाधीन सिद्धक नृपक सभामे शोभित शोचित भेलाह ताहि ब्राह्मण कां व्याधिरहितकय बहुत सुवर्ण सों अदरिद्र कय अपन गृह पठवित भेलाह ।

इतिशास्त्रविद्याकथा

अथ वेदविद्यकथा ।

शिक्षाव्याकरणज्योतिशछन्दःकल्पनिरुक्तिभिः ।

षडङ्गैः सहितान् वेदान् यो जानाति स वेदवित् । १ ॥

अस्त्यवन्तीनामनगरी तस्यां प्रियश्रृङ्गारो नाम राजा बभूव सचैकदा प्रासादशिखर मारुढ स्तन्नगरवासिनः प्रचुरधननाम्नो वणिजः पुत्रीं मालतीनाम्नीं सरसि कृतस्नानां गच्छन्ती न्ददर्श । तस्याः सौन्दर्य्य मव लोक्य मदनशरव्यापारपरिभूत श्चकम्पे । यदियं मृगाक्षी परावृत्य मां कथ मव लोकयतु ॥ श्लोको यथा

नृत्यद्भ्रूलत मुन्नतस्मित मुरीकुर्व्वन् त्रपाविभ्रमं ।
नेत्रोपान्तनितान्तवान्तधवलश्यामश्रि वामभ्रुवः ।
एतस्या वदनं विभाति वलितग्रीवं समालोकितं
स्वर्ग स्तस्य कियान् कियत्यमरता किं राज्य माम्भोनिधेः । २

भाषानुवाद ।

शिक्षा व्याकरण ज्योति छन्द कल्प निरुक्तिसों
षडङ्ग वेद जे जान वेदविद्य से युक्ति सों ॥१

छथि अवन्ती नाम नगरी ताहि विषय प्रियशृङ्गार नामक राजा होइत भेलाह से एक समय अपन प्रासाद शिखर सौं तेहि नगर निवासि प्रचुर धन नाम श्रेष्ठीक कन्या मालती नामकि सरोवर सों स्नानकयलै जाइति कौं पथमे देखयित भेलाह तनिक सौन्दर्य्य देखि से कामसर भ्रमित हृदय भेलाह जौं ई हरिणनयना घूरि कोना हमर अवलोकनकरथ ।

नरेन्द्रछन्द ।

नचयित भ्रुकुटि मनोहर स्मितयुत लज्जाविभ्रम कयलै ।
नेत्रोपान्त नितान्त व्यक्त हो श्याम धवल औधयलै ।
वलित ग्रीव हिनक मुख देखल मनमन कयल विचारे ।
पृथिवी सकल राज्य देवलकि स्वर्गक सौख्य असारे ॥२

ततस्तेन राज्ञा वणिग्वधूं प्रति दूती प्रहिता । दूत्युवाच । अये मालति मत्पुण्यं त्वत्र तर्कयामि यतोऽसौ राजा सुन्दरीशतसेव्यमानोऽपि त्वयि साऽभिलाषो वर्त्तते तदाऽऽगत्य च्चणमात्रं तस्य राज्ञः कामनां पूरयित्वा निजसौन्दर्य्यं तारुण्यञ्च सफलय कनकरत्नादिभिः कृतार्थीभव । मालत्युवाच । दूति पुनरेवन्न वक्ष्यसि । यतोऽहं शुद्धजाता साध्वी भवामि स्वपतिव्यतिरिक्ते पुरुषे वाञ्छाऽपि न साध्वीनां धर्म्मः । यतः ॥

सुन्दरो रूपहीनोवा दरिद्रो वाऽथ भूपतिः ।
पतिरेव प्रियः सत्यः पितर श्चेतरे जनाः । ३ ॥

ततो मां प्रतिव्यतिरिक्ता स्सर्व्वे पितृकल्पा एव राजा तु पितैव विद्यते । यतः ।

सूयेते पितरौ राजा पुष्णाति परिरक्षति ।
पित्रो रप्यधिक स्पूज्यः प्रजानां पृथिवीपतिः । ४ ॥

भाषानुवाद ॥

ततय सेराजा वणिकक स्त्रीक प्रति दूती पठाओल । दूती जाय कहल । अयि मालति महा पुण्य अहांक हमतर्क्क करैछी जे हेतु सुन्दरीस्त्री शतसौं सेवित राजा तथापि अहांमे अभिलाष रूथि ततय जाय चणमात्र हुनि राजाक कामना पूरि अपन सौन्दर्य्य औ तारुण्य सफल करू रत्नादिसौं कृतार्था होउ । मालतीकहल । दूति पुन एहन नहि वक्तव्य जें हम शुद्धकुल उत्पन्ना पतिव्रता थिकांह अपन पुरुष सौं अन्यपुरुष मे वाञ्छा होंहो नहि सती धर्म्म कारण अहूं ।

दोहा ॥

सुन्दर रूपविहीनवा की दरिद्र की भूप ।
पतिए एक सतीक प्रिय आन पिता अनुरूप ॥ ३

ततय पतिसौं अतिरिक्त पुरुष सकल पिताक कल्प थिकथि राजा तौं पिता एथिकाह ।

दोहा ।

जन्म देथि माता पिता पालक रक्षक भूप ।
माय वाप सौं अधिकसे मानय विष्णु सरूप ॥ ४

दूत्युवाच । अयि सुभाषिणि स्वामी तव देशान्तरे त्वं पितृमन्दिरस्था वृथा यौवन क्षयन्ती राजानं साभिलाषमुपेक्षसे कस्तवाऽयं दुर्ग्रहः । तथाहि ॥

निःशङ्कं नयनाञ्चलेन चलता कर्णान्त मासाद्यते
स्मेराम्भोजमुखि क्रमेण गुरुता न्धत्ते नितम्ब स्तव ।
उत्तुङ्गौच कुचौ परस्पर मिमौ सीमान माक्रमत
श्चेदद्याऽपि कुलव्रते न विरति र्व्यर्थश्रमो मन्मथः । ५ ॥

कथय कथंवा सतीत्वं पालयितुं शक्ताऽसि तथाच ।

उद्धुद्धताङ्गमहोत्सवेषु स्त्रियो न कामव्यसनं सहन्ते ।
विशिष्य यस्याः पतिरस्ति दूरे सा विह्वला किं कुरुते वराकी ॥ ५

भाषानुवाद ॥

दूती कहयित भेलि अयि सुवचना स्वामी अहाँका देशान्तर अहाँ नैहर पिताक गृह स्थिता व्यर्थ युवावस्था व्यतीत करैछी साभिलाष राजाक अनादर करैछी की अहाँक दुराग्रह हठ ॥

चौपाई ॥

नयन निशंक कर्ण पथ लाग । गुरुता धयल नितम्ब सभाग ॥
कुच युग उन्नत धयल सिमान । विकच कमल मुखि कि कहब आन ॥
एखनहु धरि जौं कुल व्रत प्रीति । व्यर्थ परिश्रम मदन अनीत ॥
यौवन व्रत केतक अनुमान । व्यर्थ विभव जौं देखलन आन ॥ ५

कहू कोना अहाँ सतीत्व पालना कय सकब ॥

चौपाई ।

जाग्रत यौवन उत्सव पाय काम व्यसन के सहती हाय ॥
जनिकर नहि पति तहय समाज करति बेचारी सेकी आज ॥ ५

त्वमिदानीं पतिविरहव्याघकवलिता कुरङ्गीव किमन्य त्करिष्यसीति नश्चितं पञ्चशरबाणनिर्भिन्नहृदया कमप्यनुसरिष्यसि तद्राजान मे वाऽनुसर। मालत्युवाच। अयि दूति पुन रेव न वक्तव्यम्।

सतीसहस्रेषु शतेषु शूरो लक्षेषु मध्ये घटते वदान्यः।
निसर्गविश्रम्भविशेषणाञ्चसुहृच्च कोटिष्वपि दुर्लभोऽस्ति॥

तदन्यस्त्रीसाधारणतया कुतो मां प्रेरयसि काष्ठकठिनहृदयाऽहं तव वचसा नभिद्याभीति तस्या वचनं दूतीद्वारा समाऽऽकर्ण्य राजा तां प्रति सामर्षः प्रशस्तपुरुषद्वारेण तस्यै मिथ्यापाप मचीकरत्। ततः परपुरुगामिनीति विदित्वा कुटुम्बवर्गं स्तां परितत्याज क्रमेण देशान्तरा दागतेनाऽपि स्वामिना परित्यक्ता। सा भ्रमराऽपरीचित परिमलेव मालती म्लाना बभूव ततो धर्म्मैकशरणा निरपरद्दा कुटुम्बे ष्वऽभिधाय माषकाकर्षण न्दिव्यं कृत्वा परिवादसागरं परिततार त्वं

भाषानुवाद।

तौँह यहि समय पति विरह रूपी व्याघ्रसौँ घृता हरिणी समाना उपायान्तर करवह ई निश्चिति अकि कामशर व्यथित हृदया ककरो अनुसरण करवे करवह ततय राजैक अनुसरण करह। मालती उत्तर देल। अयि दूती एहन नहि वक्तव्य॥

दोहा॥

एका सती हजार मध शए मध एके शूर।
एके दाता लक्ष मैं सुहृद कोटि मैं पूर॥ ४

तैंइतर पामर स्त्री जकां कियक प्रेरिता करथ चहैछी काष्ठ कठिन हृदया हम अहांक वचन सौँ नहि प्रभिभाव। ई तनिक वचन दूतीद्वारा राजाशूनि तनिकां विषय सामर्ष प्रशस्ता पुरुष द्वारा ताहि मालती कां मिथ्या अपवाद ख्याति करवाओल ततय परपुरुषगामिनी ई थिकी ई बूझि कुटुम्बलोक सौँ वहिष्कृता भेली। क्रमहि परदेशसौँ स्वामी जनक आगत मालतीक दुः प्रथा जानि त्यागि देल भ्रमर सौँ अपरिचित परिमला मालती समाना मालतीबाला मलिना होइति भेलि ततय धर्म्म मात्रसहाया निरपरद्दा गेलि कुटुम्बवर्गकें यथार्थ निवेदन कय माष कर्षण दिव्यकय परिवाद समुद्र सौँ उत्तीर्णा भेलि

परीक्षोक्तीं तां विदित्वा स राजा सुतरां जातवैर स्तत्र धर्म्म सामगाता
रं छान्दसं वेदशर्म्मनामानं निनिन्द राजोवाच । रे सामग कीदृश स्ते
साम्न: प्रभावो यदीयमपि कुलटा प्रशास्तृपुरुषैः प्रत्यक्षीकृतव्यभिचारा
जयभाजन मभूत ॥ वेदशर्म्मोवाच ॥ राजन्नेयं व्यभिचारिणी यदि व्यभि
चारिणी स्या त्तदास्याः पराजय एव भवेत् यतः ॥

पावको यत्र निर्णेता यत्राऽहं धर्म्म सामगः ।
कथानि स्तव शुद्धानां कजयो व्यभिचारिणाम् ॥ ६

राजोवाच । धिक् पावकं धिक् सामगञ्च भवन्तं यदि यं व्यभिचारिणी
प्रत्यक्षीकृतदोषाऽपि जयभाजन मभूत् तूयञ्चेज्जयभाजनं तदाऽनया प्रति
ज्ञया वेश्ययाऽपिदिव्यं जेतव्य मित्यऽभिधाय वेश्यां सतीत्वेन परीक्षितुं
दिव्य कारयितु मारब्धवान् धर्म्मोऽश्रद्धया स पापी भूपतिः । वेदशर्म्मोवाच ।
देव यद्येषा वेश्या गुटिकाकर्षणं करिष्यति तदा वह्निरपि परिक्षको न

भाषानुवाद ॥

से जानि राजा अतिशय उत्पन्नवैर ततय सामग वेद शर्म्माक निन्दा करयित भेला । राजा कहल रे सामग कोहन तोर सामक प्रभाव जखन हमर प्रशास्ता पुरुष सौं प्रत्यक्ष व्यभिचारिणी ई जयपात्र हो इति भेलि । वेदशर्म्मा उत्तर देल । महाराज ई नहि व्यभिचारिणी जौं व्यभिचारिणी रहैति तौं पराजय पवैत हेतु ॥

दोहा ॥

पावक निर्णेता जतय शुद्धक ततय न हानि ।
धर्म्मक सामग हम जतय कत व्यभिचारिक मानि । ६

राजा कहइत भेला धिक धिक अग्निकाँ धिक धिक रे सामग तोहरहु जतय ई व्यभिचारिणी प्रत्यक्ष कलंका जय भाजन होइत भेलि ई जौं जय भाजन तौं एही प्रतिज्ञा सौं वेश्या से हो दिव्य कय जय भाजन होइति इत्यादि कहि वेश्याकाँ सतीत्वपरिक्षार्थ दिव्य आरम्भ करयित भेला धर्म्म मैं अश्रद्धा वुद्धि सौं पापी राजा । वेद शर्म्मा कहल । हे महाराज तौं ई वेश्या लोह गुटिका आकर्षण करति गय ताहि मैं अग्नि से हो नहि

कर्त्तव्यः किन्तु मया गीयमानं सामैव परीक्षकं भवतु। तथास्ति साम्नः सामगस्य धर्म्मस्यच परीक्षाकृता भविष्यतीत्यऽभिधायाऽग्रिमप्रभाते तेन ब्राह्मणेन तामूपात्रे कृत्वा जल मानीय स्वकीयसुवर्णाङ्गुलीयकं धर्म्म साम्नाऽभिमन्त्रितं सूर्य्य किरणचुम्बिते तस्मिन् जले निःक्षिप्तं उक्तञ्च रे वारविलासिनि यदि साध्वी भवसि॥

तदाकर्ण्येदं मम सुवर्णाङ्गुलीयकं पश्चाद्राज्ञो निदेशेन परपुरुषाऽभिगमेन सप्रतिज्ञा सापण्यस्त्री यावदङ्गुलीयक माक्रष्टुं करंचिक्षेप तावत्तन्मन्त्रप्रभावेण जला देवोत्थितस्य पुरुषपरिमाणोवह्निः साच पण्यस्त्री दग्धहस्ता तस्मा दपससार सभासदश्चाश्चर्य्यं साधुवादञ्चक्रुः। राजाच लज्जाकलङ्कितवदनः शापभीतश्च ब्राह्मणस्य पादयो र्निपपात। ब्राह्मणस्तु शुद्धहृदयत्वात् सुखाऽपनेयप्रकोपः पृथ्वीपते स्तस्य त मपरा धंममर्ष तथाहि॥

भाषानुवाद॥

परिक्षक कर्त्तव्य किन्तु हमरा सौं गायोल साम सैह धर्म्म परीक्षक हयताह तेहन सत्ता सामक ओ सामगक परीक्षा हयत ई कहि अग्रिम प्रभात समय से ब्राह्मण ताम्र पात्र मैं जलद्य आनल ओ अपन सुवर्ण अंगुठी धर्म्म साम सौं मंत्रित सूर्य्य किरण परिचीत्वित ताहि जल में निःक्षेपण कयल कहल रे वेश्या जौं साध्वीछहि॥

तौं आकर्णण कर ई हमर अंगुठी पश्चात् राजाक आज्ञानुसार परपुरुष अववारक अभाव प्रतिज्ञा वाक्य सहित से वेश्या यावत से अंगुठी ग्रहणार्थ हस्त क्षेपण कयल तावत से मन्त्र प्रभाव सौं जल सौं उठल पुरुष परिमाण अग्नि से पुन वेश्या दग्धहस्ता सन्ता ताहिस्थल सौं पडाइलि सभासद लोक आश्चर्य्य २ कहि साधुवाद कयल राजापुन लज्जा सौं कलंकित मुख ब्राह्मणाक शाप भय सौं ब्राह्मणाक चरण अनुसरण कयल ब्राह्मण तौं शुद्ध हृदय सुख सौं अपनेय कोप राजाक तेहनो अपराध क्षमा कयल।

विद्यानामुत्तमा वेदा षड्भि रङ्गै समन्विताः ।
विद्याविदाञ्च सर्व्वेषां ज्यायान् जगति वेदवित् ॥ ७

इतिवेदविद्यकथा ॥

अथलोकविद्यकथा ॥

लोककर्म्मणि यो दक्षो विद्ययाऽपि विनाभवेत् ।
फाले सविद्यसादृश्याल्लोकविद्य स उच्यते ॥ १

आसीत्कुसुमपुरे नन्दोनाम राजा तस्य कायस्थः सकटारो नाम मन्त्री बभूवसच केनचिदपराधेन सर्व्वस्वं गृहीत्वा सपुत्रकलत्रोराज्ञा काराऽगारे निःक्षिप्तः तत्राऽपितस्मै सपरिवारायैकशरावपरिमिता एव निम्बशक्तवः प्रतिदिनं भक्ष्यत्वेन दीयन्तेतद्दृष्ट्वा तेन सकटारेण परिवारे

भाषानुवाद ॥

दोहा ।

विद्या मैं विद्योत्तमा वेद षडङ्ग समेत ।
वैदिक पुनि विद्वान मैं श्रेष्ठ स्वधर्मनिकेत ॥ ७

इतिवेदविद्यकथा ।

अथलोक विद्यकथा ।

दोहा ॥

लोककर्म्म मैं दक्षले विद्या विनु सभठाम ।
फलसविद्य का दृश्यसौं लोक विद्य छोनाम ॥ १

छलकथि पटना मैं नन्दनामक राजा तनिक कायस्थ सकटारनामकमन्त्री छलाह्सेतनिका पुन कोनो अपराध सौं सर्व्वस्व हरण कय सपरिवार को कारागार मैं स्थापित,कयल ततह तनिलोक कां एक सरवा परिमित निम्बक सातु भोजनार्थ प्रतिदिन देथिनि सेदेखि

प्रभिहितंयदयं राजाचाण्डालहृदयो विनाऽपराधेनाऽस्मान् दुःखन्द त्वा घातयति शरावमात्रशक्तुभिः सर्व्वेषा माहारसिद्धिः सम्भवत्येव न। तत स्स खादतु शक्तुशरावं योऽस्य वैरप्रत्युद्धारे समर्थो भवति। परिवार रुक्तं आर्य्य यदि भवान् जीवति तदा परमेतस्य वैरस्य परीवारसंहारतमस्य प्रत्युद्धार स्सम्भवति तत स्सकलपरिवाराणा मनु रामर्षेण सकटार एव तदन्नं खादित्वा स्वकीयजीवं रचितवान्। तस्य परिवारा मृता एव एकदा स राजानन्दः प्रस्त्रावगृहात् स्मितं कुर्व्वन् बहिर्ब्बभूव तं हसन्तं दृष्ट्वा पानीयपरिचारिका तदानी न्तत्राऽवस्थिता विचक्षणानाम्नी चेटीजहास। तां हसन्ती मवलोक्य। राजोवाच। रे विचक्षणे कुतो हससि। विचक्षणोवाच। यतो देवो हसति। राजोवाच। मया कुतो हस्यते। विचक्षणोवाच। देव तदहं न जानामि। राजोवाच। आः पापे कपटिनित्वयैवोक्तं यतो देवो हसति ततोऽहमपि हसामि त्वमेवाभिदधासि यत्तदहं देवस्य हासकारणं न जानामि

भाषानुवाद।

सकटार परिवार कें कहल जों ई राजा चाण्डालहृदय विना अपराधहि दुःख दयदय प्राणान्त करैछथि एक शरवा परिमित शातु मात्रसौं सब व्यक्तिक आहार सिद्धि सम्भवे नहि ततय सेखाय शातु शरवा परिमित निश्चरसबोरल जेहिनक वैर प्रत्युद्धारमें समर्थ होथि परिवारलोक कहल। हे आर्य्य जों अपने जिबयित रहब तों पुन परिवार संहार सन्तप्तवैरक प्रत्युद्धार सम्भवी थिक ततय सकल परिवार विचारसौं सकटार सैह से अन्न खाय अपन जीवक रक्षा करयित भेला तनिक परिवार सबपरलोक प्राप्त भेल। एक समय सेराजा नन्द स्नव प्रकागृह कों स्मित मुख वह रयलाह तनिकां हसैत देखिपानि देनिहारि दासी विचक्षणा नामक्रि ताहि समय ततयछलि सेहो हसलि। राजा देखि पुछल रेविचक्षणा कियक हसैतछैं। विचक्षणा कहल। जें अपनै महाराज हसलछ। राजा कहल हम कोकारणसौं हसलछ। विचक्षणा कहल महाराजसे हम नहि जनैछी। राजा सकोपकहल। आःपापिनि कपटिनि घपनहि तो कहलें अछि जेकारणसो अपनें हसलछ। पुन कहैछें हासकारण हम नहि जनैछी ईको अमरहि आगां परस्पर विरोधी वचनें

किमेतन्मामाऽपि पुरतः परस्परविरोधिना वचनेन कथयसि यदि स्व
हितमिच्छसि तदा कथय सत्वरं मम हासबीजं नो चेत्तदा शान्तिं करि
ष्यामि ततो राजकोपभीतया भणितं देव सद्यः कथयितुं न शक्नोमि
एकमासाऽभ्यन्तरे कथयिष्यामि ततो लब्धाऽवधिः सा दासी चिन्तया
मास । यत्सुबुद्धिपरामर्शपरिच्छेद्यमेतत् ततः सुबुद्धिं कमपि पृच्छामि
सुबुद्धिषु प्रथमगणनीयः सकटारः स चेदानीं भागधेयदोषतः कारा
गृहे विद्यते ततस्तमेव गत्वा पृच्छामीति परामृष्य तत्र च कारागृहे
दुःखदुर्बलं सकटारं मिष्टान्नपानैः परितोष्य तद्वृत्तान्तमपृच्छत् ।
सकटार उवाच । विना देशकालानुसारिणा प्रकरणज्ञानेन
परिच्छेत्तुं न शक्यते राज्ञः स्मितकारणं तदवसरं कथय । विचक्ष
णा चाऽवसरं कथितवती । सकटार उवाच । त्वं कथयसि यन्मूत्रप्रवा
हं दृष्ट्वाऽश्वत्थवृक्षं पश्यन् स राजा जहास तर्हि पूर्वदृष्टस्य कस्याऽपि
वस्तुनः स्मरणं न हासनिमित्तं तदानीं तद्दृष्टिमनसोर्हं चाऽऽसक्तत्वा

भाषानुवाद ।

कहैछें । जों अपन कल्याण क इच्छा होअ तों कह शीघ्र हमरा हसीक हेतु नहि तों एकर
शान्ति करबो । राजाक कोपवचन भीता विचक्षणा कहल । महाराज सद्यः नहि कहि
सकैछी एकमासोन्तर विचारि कहब । राजा सों पावि अवधि चिन्ता करयित भेलि दासी
सबुद्धिलोकक साध्य एकर उत्तर ततय सबुद्धि ककरहु पुछीअ सुबुद्धि गणना कोटि में
प्रथम गणनीय सकटार छथाह से एहि समय भाग्यक अधीन कारागार में छथि । ततय
तनिकहि जाय पुछिअैनि ई विचारि ततय जाय कारागृहमें दुःख दुर्ब्बल सकटारकों
मिष्टान्न पानसों सन्तुष्टकय ओवृत्तान्त पुछयिति भेलि । सकटार कहल विनादेश काल
ज्ञानसों प्रकरण ज्ञान विना कोना कहिसकब ॥ राजाक स्मित कारण । तकर अवसर कह ।
विचक्षणा अवसर कहल । सकटार कहल तो कहैछें मूत्रप्रवाह देखि पिपर गाछ
देखयित राजा हसलाह । तों पूर्व्व दृष्टवस्तु कोनो हासक कारण नहि तखन दृष्टि मनक

न् प्रकृत एव वृक्षधर्म्मो न हास्यनिमित्तं हास्यस्य वस्तुविकृतिदर्शनमन्य
त्वात् तत्किं दृष्टं विकृतं राज्ञाऽश्वत्थवृक्षे अतो ज्ञातं मूत्रप्रवाहे वह
दश्वत्थबीजं क्षुद्रतरं दृष्ट्वा तदङ्कुरं महापरिमाणवृक्षं पश्यन् परामृष्ट
वान् राजा यदहो वैकृत्यं धातुःप्रपञ्चस्य क्व देवबीजं क्वाऽयंतरुः तत स
त्यमेवेति हसितं भूपालेन पुनः पुनः परामृश्य सकटार एतदेवेति नि
र्द्धारितवान् अब्रवीत्। विचक्षणाच तदेव वचनं गत्वा राज्ञः पुरस्तादुक्त
म्। राजोवाच। विचक्षणे सत्यं कथय सकटारो जीवन् वर्त्तते। विचक्ष
णोवाच। अथ किं राजोवाच। कोऽन्य स्सकटारादिदं निर्द्धारितु मलं
भवति अहो तर्क स्सकटारस्य तत स्तर्कं परितुष्टेन राज्ञा सकटारं पुन
रानीय सन्मानपात्रं कृत्वा राज्यचर्च्चायां मन्त्रिराक्षसस्य द्वितीयः कृतः
सकटार स्तुना म्पदवी मासाद्य चिन्तयामास अहो दुर्न्नीति रस्य रा
ज्ञः सकलपरिवारं हत्वा मामेव मन्त्रिपदव्यां स्थापयति मूल मुच्छिद्य
दले जलन्ददाति॥ तथाहि

उत्कटं वैर मासाद्य पुनः सौहृद मिच्छति।
यमपत्तनयात्रायां स पन्थान मवेक्षते ।२॥

भषानुवाद॥

वृक्षआसक्ति सो प्रकृत वृक्षधर्म नहि हास्यहेतु हासकाँ वस्तु विकृति दर्शन हेतु थिक सेको देखल विकृत वस्तु राजापिपर वृक्षमें ईहेतु जानलगेल मूत्रप्रवाहमें वहल पिपरक बीज क्षुद्रतर देखि ताहीसौं उत्पन्न महागोट वृक्ष देखयित विचार करयितभेला राजा महा आश्चर्य वैकृत्य विधाता प्रपंचक कतय ईबीज कतयईवृक्ष ताहिसौं उत्पन्न एहीकारणा सौं राजा हसलाह पुनपुन विचारि सकटार सैह निश्चितकय कहल। विचक्षणापुन सैह वचन जाय राजाक आगां कहल। राजाकहल हेविचक्षणा सत्य कहु सकटार जिवतहि छथि। विचक्षणा कहल। अतः परकी। राजाकहल सकटार विना केआन एहि विषयक निश्चय करयित आश्चर्य तर्क सकटारक ततय तर्कं परितुष्ट राजा सकटारकाँ पुन आनि सन्मान पात्र कय राज्य चर्चामें मन्त्रिराक्षसक द्वितीय मन्त्रीकयल सकटार पुनसे पदवी पावि चिन्ता करयित भेला एहि राजाक दुर्नीति आश्चर्य हमर सकल परिवार मारि हमरहि पुन मन्त्री पदवी मैं स्थापल मूल उपाडि पत्रमें पानि दैछथि हेतु॥

दोहा

कयकँऊ उत्कट वैरजे चाहथि सुहृद दसलाह
यमपुरयात्रा पथपुछव तेहन मन अभिलाह।२

कथम्वा ममाऽपि मनः प्रत्येति दुष्टाऽऽश्रयेऽस्मिन् यतः

दृष्टा वैरक्रिया यस्य पुरापर्य्यन्तगामिनी।

तस्मिन् विश्वास मायान्तं मृत्यु र्जिघ्रति मस्तके॥ ३॥

तदिदानीं किमुचितं पुरातन मस्य वैर मिदानीञ्च सौहृदं चिन्त यन् संदिग्धचित्तोऽस्मि किं करवाणि अथवा वैरोद्धारार्थमेव तदपि जीवनं स्वीकृतं यदाऽनेन दुरात्मना कुस्वामिना पश्यतो मम पुत्रादयो हताः। तद्यथा

रुष्यंस्त्वं गतमेव गच्छतु नृपं मानि न्न सा मादृशां

लक्ष्मीश्च स्थितिचञ्चलैव सुधियः शोचन्ति के ताङ्गताम्।

ते पुत्रा स्सदसि प्रगल्भवचस स्ता स्सानुरागाः स्त्रियो

नष्टाः किल तेच तेच शिशव स्ते तोन मुञ्चन्तिमे। ४॥

भाषानुवाद।

कोना हमरो मन विश्वास करत एहि दुष्टाश्रय में॥

दोहा॥

वैर क्रिया जनिकर सकलि देखल उत्कट कष्ट।

इनि विश्वासी पुरुष शिर मृत्यु सूँघ जनु स्पष्ट॥ ३

तो एखन की उचितपूर्व्ववैर किनक संप्रति सुहृद्दता चिन्ता करैत सन्देहालुचित्तहम कीकरू अथवा वैरोद्धार मात्र प्रयोजन सौं जीवन स्वीकार कयल जे हेतु ईदुरात्मा स्वामीक देखतहि हमर पुत्रादि हतभेल।

चौपाई॥

जे सर्व्वस्व नृपति हरिलेल मन न मलिन किछु गेल से गेल।

लक्ष्मी गेली सोच न आव इनकर ईथिक सहज स्वभाव॥

सभा प्रगल्भ वचन से तनुज से से नाति मनोहर मनुज।

पति अनुरागिनि गेली नारि मनसौं हम नहि छोड़ब टारि॥ ४

तद्वैर मवश्य मुद्धरणीय न्तद्याऽप्यपयशो विनिवार्य्य वैर मप्युद्ध्रियते दुत्युचितं भवति तेनाऽधमपुरुषपदवी न प्राप्यते । तथाहि

पापात्त्रस्यति य स्स एव पुरुषस्त्वा दुत्तमो भूतले
पापात्माऽपि बिभेति योऽपयशस स्स ज्ञायते मध्यमः ।
चासौ यस्य न पातका दपि नवा लज्जाऽपवादादपि
प्रज्ञानैर्ङ्गिरुदाहृतोऽय मधम स्सर्व्वैश्च निन्द्यास्पदम् ॥ ५ ॥

इति चिन्तयन्नेव स मन्त्री कदाचि दारामदर्शनकुतुकेन तुरगारूढो भ्रमन्पुराद्बहिः कियत्यऽपि दूरे कुशा नुत्खाय कुशमूले त क्रन्ददान मेकं चाणक्यनामानं ब्राह्मणं ददर्श तं दृष्ट्वा सकटारउवाच । वटो हे कस्त्वं किमत्र कुरुषे । ब्राह्मणउवाच ॥ चाणक्यशर्म्मा ब्राह्मणो ऽहं साङ्गवेद मधीत्याऽनेन पथा विवाहार्थितया गच्छतो मम कुशाङ्कुरे ण पादक्षतं कृतं तेन क्षतेन विवाहभङ्गाऽसमर्पित स्तत्प्रतिज्ञातदानऽस्मि

भाषानुवाद ॥

तनिक वैरकउद्धार अवश्य करणीयो तथापि अपयशक निवारण कयवैरोद्धारो समुचित होइछ तेहि सौं अधम पुरुष पदवी प्राप्ति नहि दर्शित करैछथि ।

चौपाई ।

पापक जानिकाँ अतिशय त्रास । सैहो उत्तम धर्म्म प्रकाश ॥
पापात्मा पुन अपयश भीति । मध्यम पुरुष ताहि कह नीति ॥
अप यश पापहु जैन डेराव । अधम अलज्ज से नाम धराय ॥
सब खल निन्दा शुनिलहु कान । खलता उद्यम हुनक प्रधान ॥

ई चिन्ता करयित ओ मंत्री कदाचित् उपवन दर्शन कुतूहल सौं अश्व चढल भ्रमणकर यित नगर बाहर कतोक दूर कुशमूल कोडि ताहि मैं तक्रसौं पटवैत एक चाणक्यना मक ब्राह्मण कां देखइत भेला । तनिकां देखि । सकटार कहल । बटोही अहाँ कैं एहाँ की एतय करैछी ब्राह्मण कहल । चाणक्य शर्म्मा ब्राह्मण हम साङ्गवेद पढि विवा ह प्रयोजन सौं जाइत कुशांकुरैं हमर पयर मैं चोत भेल ताहि चत प्रतिबन्धै विवाह

तदस्याः स्वल्पाः कुशं निर्म्मूलङ्करिष्ये ततो वृद्धायुर्व्वेदाधिगमा दय मुपायः सुकरो निर्द्धारितः यत्तक्रेण कुशा विनश्यन्तीति तथा समाचरन् पूर्णप्रतिज्ञो भवामि । सकटार उवाच । दृष्टः भवता वृद्धायुर्व्वेदाधिगमः कृतो नोचेत्प्रतिज्ञापूरणं कथंस्यात् । चाणक्य उवाच । यदत्र मुपायो नस्यात् तदाऽभिचारकर्म्मणि प्रविष्टोऽस्मि कुशविनाशनकामनया होम मेवाऽकरिष्यं तदाऽऽकर्ण्य सकटार श्चिन्तयामास । अहो अस्य ब्राह्मणस्यामर्षश्च अहो उपायप्रवीणता यद्यत्र मम वैरिणो वैरी भवति तदाहं वैरोद्धारकर्म्मणि विना आयासेनैव कृतार्थो भवामि ततः सकटार स्तत्समीहितं स्वकीयसहायेन कुशोन्मूलं कृत्वा तं ब्राह्मणं स्वकीय मागारं नीतवान् ॥

पश्चात् पुरोधसा समं संप्रधारणां विधाय राज्ञः पितृक्षयाहश्राद्धे तत्पात्रत्वेनोपनीतवान् परामृष्टवांश्च यदयं ब्राह्मणोऽकृतविवाहः कपिलः श्यावनखदन्तश्च पात्राऽनर्ह एव विशेषतो ममाऽधिकारविरोधिना मन्त्रि

भाषानुवाद ।

भंग भेल तें अमर्षित हमप्रतिज्ञाकयल जे एहि स्वल्पक कुश निर्म्मूल करब ततय वृद्धा युर्व्वेद विज्ञान सौं निर्द्धारित कयल सुलभ उपाय तक्रसौं कुश नाश हो ई । तेहन कय पूर्ण प्रतिज्ञ हम हयब । सकटार कहल । नीक अहांकआयुर्व्वेद में परिश्रम कयल नहि तौं प्रतिज्ञा पूरण कोनगत होईत । चाणक्य कहल । जौं उपाय नहि रहैत तौं अभिचार कर्म्ममे प्रवीण हम कुश विनाश कामना मे होमे करितहुं । से सुनि सकटार चिन्ताकरयित भेला आश्चर्य एहि ब्राह्मणक अमर्ष आश्चर्य उपाय प्रवीणता जौं ई हमर वैरीक वैरी होइतथि तौं हम विना आयासहिंवैर उद्धार कर्म्मक मैं कृतार्थ होइतहुं ततय सकटार तनिक इच्छित अपन सहायता सौं कुशउन्मूलन कय ताहि ब्राह्मणकें अपन गृह अनयित भेला ॥

पश्चात् पुरोहितक सङ्ग मेल कराय राजाक पितृक्षयाहश्राद्ध में तत्पात्रत्वें उपस्थित कराओल विचार कयल जौं ई ब्राह्मण अविवाहित कपिल श्यावनखदन्त पात्रयोग्य नहि विशेषें हमर अधिकार विरोधी मन्त्रिराक्षस सौं हमर आनल जानि निश्चय अपमा

राक्षसेन ममोपन्यस्तोऽयमिति निश्चित मपमानयितव्यः । पश्चात्तथैव नन्दराज्ञि श्राद्धं कर्त्तुं मुद्यते ब्राह्मणे पात्रासनविषये च । मन्त्रिराक्षस उवाच । देव नाऽयं ब्राह्मणः पात्रयोग्य इत्यभिधाय तत्साधकानि स्मृतिवाक्यानि पठितवान् सकटारः शूद्रोयं मूर्खश्च कथ मिद मनुसन्धाय राज्ञो धर्म्मबाधं कुरुते तस्य मंत्रिराक्षसस्य वचनं श्रुत्वा जाताऽमर्षेण नन्देन दुर्द्दैवदेशितेन पात्रासना दवतार्य्य साधिक्षेपं ब्राह्मण श्चाणक्यो बहि र्निस्सारितः । ततश्च स च्चाणक्य तथाविधापमानक्रुद्धं नन्दवधे कृतप्रतिज्ञं विधाय सकटारो मन्त्री कृतकृत्यं देहत्यागार्थं वाराणसीं जगाम तथाहि ॥

विचक्षणपरिज्ञाता चाणक्यश्च परीक्षितः ।
बुद्ध्यैव सकटारेण वैर मुद्धृत मप्रता ॥ ५

॥ इति लोकविद्रकथा ॥

भाषानुवाद ॥

नित चयताहे । पश्चात् तैहि तरह नन्दराजा पितृ श्राद्ध आब आरम्भ कयल पात्रासनस्थ चाणक्य ब्राह्मण सन्ता । मन्त्रिराक्षस कहल । हे महाराज नहि ई ब्राह्मण पात्रयोग्य ई कहि तकर साधक स्मृति वचन पढिदेल । सकटार मूर्ख श्रो शूद्र कोना ई अनुसन्धान कय राजाक धर्म्म नाश करैछ । मन्त्रिराक्षसक वचन सुनि राजा उत्पन्न अमर्ष सौं दुर्द्दैवक प्रेरणासौं पात्रासन सौं उतरवाय साक्षेप वचनकहि ब्राह्मण चाणक्यका बाहर निष्कासि देल ततय पुनि से चाणक्य तेहन अपमान सौं क्रुद्ध नन्दराजवधार्थ कयल संकल्पक विधानसै कय सकटार मन्त्री कृतकृत्य देह त्यागार्थ काशी जायित भेला ॥

दोहा ॥

केवल बुद्धि प्रभाव सौं कयलनि वैरोद्धार ।
वधघाता चाणक्य मिलि कायथ से सकटार ॥

॥ इति लोकविद्रकथा ॥

अथोभयविद्यकथा ॥

वेद मभ्यसतो यस्य मति र्लोके न हीयते ।
वेदे लोके चयो दक्ष स्स स्या दुभयपण्डितः ॥ १

तद्यथा आसीत्कुमुदपुरे नन्दो नामराजा तेन पितृक्षयाहावऽसरे श्राद्धं करिष्यमाणो सचिवदोषा च्चाणक्यशर्म्मानामब्राह्मणः पात्रत्वेनाऽऽहूय प्रकोपितः तथाहि ॥

वृथैव नन्दभूपेन चाणक्यः पात्रवीकृतः ।
आहूय ज्ञानदौर्ब्बल्या त्कालसर्प्पः प्रकोपितः ॥ २

तत श्चाणक्यः प्रतिज्ञातवान् ॥

यावन्न प्रहिणोमि नन्द मवनीनाथं यमस्याऽऽलये
यावन्नैव नृपं करोमि वृषलं तस्यैव सिंहासने ।
यावद्राक्ष स मन्त्रिराक्षस महंनाऽऽमात्यता मानये
मुक्ता स्मुद्धि शिखा न्न तावदयसे बध्नामि चैनाम्पुनः ॥ ३

भाषानुवाद ।

अथोभयविद्यकथा ॥

दोहा ॥

वेद शास्त्र अभ्यासि जे लोकहु में मति धीर ।
वेदहु लोकहु दक्ष जे उभय विद्य से धीर ॥

कहलहथि कुमुद पुर में नन्द नामक राजा से पिताक क्षयाह श्राद्ध करितहि मंत्री दोष सौं चाणक्य शर्म्मा नामक ब्राह्मण कौं पात्रत्वै संगवाय कुपित करलाहोक ।

दोहा ।

वृथा नन्द भूपाल की अरि चाणक्य बनाय ।
ज्ञानहीन सौं अति कुपित काल भुजङ्ग जगाय ॥ २

तैतय चाणक्य प्रतिज्ञा कयल ।

यावत नन्द महिप अन्याय । यम पत्तन हम दिय पठाय ।
तनिसिंहासन वृषल नरेश । यावत करब न जानत देश ॥
यावत मंत्री राक्षस नाम । नहि सु अमात्य करब एहिठाम ॥
तावतशिखा न बन्धन करब । तावत नहि सुकर्म्म संचरब ॥

एवंकृत प्रतिज्ञान श्चाणक्य श्चन्द्रगुप्तनामानं राजवृषलं द्वारि दृष्ट्वाऽवोचत् रे वृषल त्वं मदग्राऽरिन्नाज्ये राजा भवितु मिच्छसि तदा मा मनुगच्छ वृषल स्तथाविधमुभादिष्टप्रेरित स्त मनुजगाम चाणक्य स्तु तेन वृषलेनाऽनुगम्यमान स्तपोवनं गत्वाऽभिचारकेन होमेनाऽविनन्दान् यमनिकेतनं नीतवान् तत स्तस्याऽभिचारप्रयोगप्रभावेन नष्टेषुनन्देषु चाणक्य श्चिन्तयामास ॥

यदेयका प्रतिज्ञा नाव त्समपूर्णा तदिदानीं चन्द्रगुप्तवृषलं नन्दसिंहासने राजानं कृत्वा द्वितीयां पूरयामि । राजाच विना सेनया युत स भवति सेनाच धनाऽधीना संप्रति मम हस्ते धन न्नास्ति किं करवाणि ततः परामृश्य पर्व्वतेश्वरं राजानं उपसृत्योवाच । राजन् पर्व्वतेश्वर कुमारोऽयंचन्द्रगुप्तो मया कुसुमपुरे राजा कर्त्तव्यः ततो भवानेवं स्वबलै रुपष्टभ्याऽर्द्धं राज्यं गृह्णातु पर्व्वतेश्वरस्तु नन्दवधे दृष्टानुभावश्च चाण

भाषानुवाद ।

एहन प्रतिज्ञा कयल चाणक्य द्वारस्थ चन्द्रगुप्त नामक राजवृषल मुरानापितिपुत्र कें देखिकहल । रे वृषल जों एहि राज्यमें राजा हयवाक इच्छा होअ तों हमर सङ्ग आ वृषल तेहन शुभा दृष्ट प्रेरित तनिकें सङ्ग तपोवन मे * जाय अभिचार होमसों नन्द सभका यमपुर यात्रा करवाओल ततय तनिक अभिचार प्रयोग सों नन्द नष्टभेला चाणक्य चिन्ता करयित भेला ॥

जों एक प्रतिज्ञा तावत पूरलि तखन एखन चन्द्रगुप्त वृषल कां नन्दक सिंहासन पर राजा कय द्वितीयप्रतिज्ञा पूर्णा करी राजा पुन विना सेना सों सम्भव नहि सेना पुन धनक अधीना संप्रति हमर हस्तगत धन नहि की करू ततय विचारि पर्व्वतेश्वर राजाक निकट जाय कहल । हे राजा पर्व्वतेश्वर राजकुमार चन्द्रगुप्त कां हमरा पटनाक राजा कर्त्तव्य अछि तें अपने सेनाक साहित्य कय दैलजाय लेलजाय आधा राज्य अपनहु । पर्व्वतेश्वर राजाकांपुन श्री चाणक्य चिनहार अभिचार प्रयोगसों नन्दराजाक संहारसों वि

* मिथिला मे नदारी ग्राम है दरभंगा सहर सों ६ मील उत्तर अभिचार प्रयोग स्थानएही छा ॥

कथञ्चोद्यमे फलसिद्धौ जातप्रत्ययः सकलबलसहितः चन्द्रगुप्तद्वितीयं नन्दपथे कुसुमपुरं कृत्वा राजानं चकार। लब्धराज्ये चन्द्रगुप्ते राक्षसनियुक्तेन पुरुषेणोपायनीयकृतां सुन्दरीं चन्द्रगुप्तपुरतो नृत्यन्तीं तदीय श्रमजलपानघूर्णमानाभिर्मक्षिकाभिर्विषकन्येयमिति परिचिन्त्य चिन्तयामास यदियं विषकन्या चन्द्रगुप्तवधाय राक्षसेन परद्वारा प्रहिताऽस्ति तदनयैवार्द्धराज्यहरस्य पर्व्वतेश्वरस्य वधो भवतु तदनन्तरं तां विषकन्यां तस्मै पुरुषद्वारा पर्व्वतेश्वराय दापितवान् तस्याश्च सम्भोगलुब्धं तपस्विपर्व्वतेश्वरे मृते चन्द्रगुप्तस्य निःशत्रुकं राज्यं कृत्वा चाणक्यः पुनश्चिन्तयामास तदियं द्वितीया प्रतिज्ञा मम पूर्णा तदिदानीं मलयकेतोर्भूपालस्य राज्याद्राक्षसमानीय चन्द्रगुप्तस्य मन्त्रितां ग्राहयित्वा।

पूर्णप्रतिज्ञो भवामि तदर्थं मयि कृत एवास्त्युपायः यद्राक्षसस्य प्रियमित्रं चन्दनदासो दसत्येव तस्य स्थाने गृहिणीजना सन्त्येव तस्माच्च पद्

भाषानुवाद ॥

प्रवास चन्तस्वाक मानि से राजा अङ्गीकार कयल चाणक्यक अभीष्ट कयाक। सेना सहित पर्व्वतेश्वर राजा पटना जाय चन्द्रगुप्त कां ततय राजा कयल राजा चन्द्रगुप्त भेला सन्ता मन्त्रिराक्षेव नियुक्त पुरुष सौं उपायन कयलि सन्दरी चन्द्रगुप्त राजाक आगां नृत्यालय मे नृत्य करय लागलि। तनि वेश्याक शरीर स्वेदजलपान सौं घूर्णमाना मक्षिका निपतिता भूमिमे देखि से चाणक्य चिन्हि तर्क सौं बुझल विषकन्या ई थिकि चन्द्रगुप्त नाश निमित्त मन्त्रिराक्षस अन्यद्वारा पठाओल अछि एहिसौं अर्द्ध राज्य हारी पर्व्वतेश्वरक बध हो। तदुत्तर से विषकन्या ताहि पर्व्वतेश्वर कां पठवाय देल तकर सय्योंग लोभी पर्व्वतेश्वर तपस्वी मृत सन्ता। चन्द्रगुप्तक निष्कण्टक राज्य कय चाणक्य पुन चिन्ता कयल जो ई द्वितीया प्रतिज्ञा पुरलि तौं एखन मलयकेतु राजाक राज्यसौ मन्त्रि राक्षस कैं आनि चन्द्रगुप्तक मन्त्री बनावी॥

तखन प्रतिज्ञा पूर्णहयत तदर्थ उपाय कयलेसन अछि मन्त्रि राक्षसक मित्र चन्दनदास एतहि बसितहि छथि तनिक गृहमे मन्त्रिराक्षसक स्त्रीलोक अछिये ततयसौं धर्म्मपट

धारिणा पुरुषेण राक्षसनामाङ्किता मुद्रा समानीय दत्ता सा राक्षसहस्ताङ्गुलीगतैव तया मुद्रयाङ्कितं सकटदासलिपिभूषितं पत्रं मलयकेतुं सेव्यमानस्य मम सहाध्यायिमित्रस्य भागुरायणस्य हस्ते प्रविष्टमेव सकटदासोऽपि सनिःकारं मया निस्सारितो राक्षसमनुवर्त्तत एव भद्रभटप्रभृतय शूराः परमाप्ताः समयकृत्यकुशला मयार्थेन परितोषिताः कृत्रिमविरोधं कृत्वेतः पलायिताः संप्रति मलयकेतौ विश्वासपात्राण्येव विद्यन्ते अवश्य मेतेनलिखनेन तैः पुरुषै रस्मिन्नवसरे मलयकेतोः सुहृद्भेदकारिणा भवितव्यं तदेवं सम्पन्ने कारणकलापे कार्य्यसिद्धिरपि सम्पन्न प्राया। यतः

सम्पन्ने कारणव्राते कार्य्यं सम्पद्यते परम्।
प्रतिबद्धा यदा धाता नथा दुर्लभचेष्टितः। ३॥

धातापि सम्प्रत्यनुकूल एव लक्ष्यते यतः।

भाषानुवाद।

धारी पुरुष राक्षस नामांकित अंगुठी आनिदेलक से राक्षस मन्त्रिक कराङ्गुलीक थिकि तन्नामांकिता अक्षिये सकटदास लिखल पत्र मलयकेतु राजाक सेवक हमर सहाध्यायि मित्र भागुरायणक हाथ पडवे करत सकटदास का हम धिक्कार दय निष्कासल से राक्षस मन्त्रिक अनुव्रजन में छथि भद्रभटआदिजे शूर परम हित हमर समयानुसार कार्य्य कर्त्ता हमरा धनसौं सन्तुष्ट कृत्रिम विरोध काय एहि स्थलसौं श्रोतय गेल छथि एखन मलयकेतुक विश्वासपात्र भेलछथि अवश्य तेहि लिखनसौं ताहि पुरुष सबकौं सुहृद भेद भइये जायत तेहन सम्पन्न भेला सन्ता कार्य्यसिद्धि सेहो सम्पन्ने सन।

दोहा।

कारण सभ सम्पन्न सौं कार्य्य सिद्धि भयजाय।
कार्य्य बिघ्न ज्ञानक तखन विधि नहि होथि सहाय॥ ३॥

विधाता सम्प्रति अनुकुले देखैछी हेतु।

नन्दा हता राज्यमिदं गृहीतं न्यवारि राज्यार्द्धहरो विपक्षः ।
श्लोकावशेषां किल मे प्रतिज्ञां मन्ये क्रमात्पूरयिता विधाता ॥ ४

अथवा धातुश्चरित्रे कानुगतिः कस्यचिन्निस्तीर्णपारावारस्यापि तटान्तमागत्य नौर्निमज्जति । तदनायत्तस्ततो न प्रमाद्यामीति परामृष्य शार्ङ्गरवनामानं शिष्यमाहूयाऽपृच्छत । वत्स, चन्द्रगुप्तमभियोक्तुं कृतप्रयाणस्य मलयकेतोः का वार्त्ता । शिष्यउवाच । तस्मादागतेन जीवसिद्धिना कथितम् । यत्सकलबलसहितो मलयकेतुरन्तिकमेवागतः किन्तु मन्त्रिराक्षसस्य निष्कारनिस्सारणव्यावृत्त्या द्वित्राणि दिनानि पथि विलम्बितोऽस्ति राजा । चाणक्य उवाच । आः कथं राक्षसस्यापि निष्कारः किन्तु तन्निमित्तम् । शिष्य उवाच । गहनं खलु राजचरितं क्वापि निमित्तनिरपेक्षापि क्रिया सम्भाव्यते राक्षसनिमित्ते त्विदन्निमित्तं यत्शकटदासलिपिभूषितं राक्षसमुद्राङ्कितं राक्षसानुजीविना विपक्षस्थानन्नीयमानमत्र वर्त्मनि प्राप्तम् ॥

भाषानुवाद ।

हरिपदछन्द ।

चन्द्रगुप्तका राजा कयलहुँ नवहुँ नन्दका मारल ।
आधराज्य पर्व्वतपति वीरकेँ देल न झटिति संहारल ।
काथ्य आर अब थोड़ रहल अछि से सब विधि पुरताहे ।
युक्ति अवश्य मन्त्रिराक्षस पुन मिलता की करताहे ॥ ४ ॥

अथवा विधाताक चरित्र मे कोन नियम कोओ समुद्रपार उतरनिहारक समुद्र तटन्ता मे नाव निमज्जिता छोड़इछ तत अपन अधीन की तथापि उद्योगश्लथ नहि करब ई विचारि शार्ङ्गरव नामक शिष्यकेँ पूछल वत्स चन्द्रगुप्तसोँ राज्य अर्द्धार्थी मलयकेतु अबैत छलाह तनिकाको वार्त्ता । शिष्यकहल ततैसौ आगत* जीवसिद्धि कहलसे मलयकेतु बहुबनिकट आबिगेल छलाह मन्त्रीराक्षसका निष्कार काय निस्सारल से प्रतिबन्धकाओ दूइ तिन दिन पथ विलम्ब भेलैनि । चाणक्य पुछल । आः कोथा कोंन हेतु मन्त्रिराक्षसक अपमान । शिष्यकहल निश्चय राज चरित अतिगहन । कवहु हेतुहीना क्रिया सम्भाविता राक्षस निमित्त ई निमित्त शकटदासकलेख राक्षस मुद्रांकित राक्षसानुजीवी पुरुष शत्रुस्थान लेसै जाइत छल पत्र वाटमे पकड़ल गेल ।

---

* जैन सन्यासी जीवसिद्धिनामा

चाणक्य उवाच। तदिदं स्थान मेव निष्कारस्य राजा ऽपथ्यकारिणो
निष्कारं ध्रुव मनु भवन्ति सनिष्कारं निस्सारितो राक्षसः क्वेदानीं
श्रूयते। शिष्यउवाच। मानभङ्गदुःखितः क्वाप्यरण्ये भविष्यति। चाण
क्यउवाच। वत्सु घातकपुरुषेषु भिधेहि यच्चन्दनदास मानीय शूल मारो
पय। चन्दनदासं ब्रूहि यद्राक्षसः स्वकीयगृहजना स्तव मन्दिरे न्यासी
कृत्य कुसुमपुरग्रहणसमये पलायितः ता नानीय देहि. शिष्यस्तथा
कृत्वा पुनरागत्य प्रणम्योवाच। आर्य्य चन्दनदासो मित्रवत्सलो मरण
मङ्गी करुते राक्षसस्य गृहजन न्न ददाति राक्षस एव तां वार्त्ता माक
र्ण्य चन्दनदासवणिजः प्राणरक्षानरोधेन वद्धस्थान मागत्य वदन्नस्ति
यदार्य्य श्चाणक्यो मां यत्कुरुते तत्कुरुतां चन्दनदासवणिजं निरपरा
धं ममार्थे प्राणानुपेक्षितु मुद्यतं परित्यजतु चाणक्य उवाच। पूर्णा त
र्हि मम प्रतिज्ञा मन्त्रिराक्षसं ब्रूहि यदि चन्दनदासस्य सुहृदः प्राणा
न्रक्षितु मिच्छति भवान् तदा चन्द्रगुप्तस्य राज्ञो मन्त्रिता मङ्गीकृत्य स्व

भाषानुवाद।

चाणक्य कहल। तखन अपमानक हेतु राजाक अनिष्ट कर्त्ता निश्चय अपमानित हो
से अपमानित निस्सारित राक्षस मंत्री कतय एखन छथि। शिष्य कहल। मानभङ्ग दुःखि
त कतहु जंगल मैं हयता। चाणक्य कहल हे वत्स घातक लोकको कहु जे चन्दनदास
को आनि शूल पर चढावै। चन्दनदासकें कहु जे राक्षसक आत्मीय लोक अहांक घरमें
राखि पटनामे चन्द्रगुप्तक स्वाधीन समय पडयलाह सेसवको आनि देथु। शिष्यते हने कयाक
य पुन आवि प्रणाम कय कहल हे आर्य्यगुरुजी चन्दनदास तों मित्र वत्सल द्वारा अपन
मरणअङ्गीकार करैछ राक्षसक गृहिणी जन नहि बाहर करैछ परन्तु मन्त्रिराक्षस सेवार्त्ता
सूनि चन्दनदास वनिआंक प्राणरक्षार्थ आहैछथि। आर्य्य महाशय चाणक्य हमर दण्डजे
करक होइनि करथु। चन्दन दासतनिआं निरपराध हमरा हेतु प्राण त्यागमे उद्यत
कैं त्यागथु। चाणक्य कहल पूर्णाभेलि तों तृतीया हमर प्रतिज्ञा। मन्त्रिराक्षसकें कहु
जों चन्दन दास मित्रक प्राण रक्षाक इच्छा रहै अहां कौतो चन्द्रगुप्त राजाक मन्त्रिता

ङ्गं गृह्णातु। शिष्यउवाच। किं करोतु राक्षसो वराकः सम्प्रति चन्दनदासरक्षानुरोधपराधीन एवाङ्गी करिष्यति दुरतिक्रमणीयोहि कार्य्यधारापाशबन्धः। तथाहि।

> अङ्गीचकार किल वामनतां मुरारी
> रामो ध्रुवास वन मब्धि रुवाह बन्धम्।
> दन्तावला इव सृणिव्यवसायरुद्धा
> किं वा ऽऽचरन्त्र इह कालवशा त्पुमांसः॥ ५ ॥

ततो मन्त्रिराक्षसः चन्द्रगुप्तस्य साचिव्य मनभिमत मङ्गीकृत्य खड्गं जग्राह।

चाणक्यस्तु चन्द्रगुप्तराजानं प्रति निश्चिन्तो बभूव तदेव वेदाध्ययनसामर्थ्यात् नन्दं हत्वा लौकिककार्य्यदक्षतया चन्द्रगुप्तं नृपं राक्षसं मन्त्रिणञ्च कृत्वा पूर्णप्रतिज्ञः शिखा ञ्चबद्धा सोत्साहः स्वाभिमतस्थानं जगाम।

भाषानुवाद ॥

अङ्गीकारकय तरुआरि धरू शिष्य कहल एखन चन्दनदासक जीक अनुरोधसौं पराधीन स्वीकार करताह कार्य्य धाराक पाश बद्ध कष्टसौं आक्रमण थिक।

चौपाई ॥

> नारायण वामन तनधयल। कानन वास राम पुनकयल।
> बन्धन जलधि कयल स्वीकार। त्याग न कयलनि अङ्गीकार।
> अंकुश विवश जेहन गजराज। काल विवश जन किकर न काज।
> मन्त्री राक्षस परवश काज। करताह पूर्ण मनोरथ आज॥ ५ ॥

ततय मन्त्रि राक्षस चन्द्रगुप्तक मन्त्रित्व अनभिमत स्वीकार कय तरवारि धयल।

चाणक्य पुन चन्द्रगुप्त राजाक प्रति निश्चिन्त होयित भेलाह सैह वेद पठन सामर्थ्य सौं नन्द कैं मारि लौकिक कार्य्य निपुणता सौं चन्द्रगुप्त राजा ओ मंत्री राक्षस कय पूरितप्रतिज्ञ शिखा बांधि उत्साह युक्त अपन अभिमत स्थान जायित भेलाह॥

श्लोकस्तु ॥

रोषो यस्य कृतान्तपत्तनमितो नन्दान्वय प्राज्ञिणी
निर्व्विघ्नं वृषलाय नून मभव त्तोषस्तु राज्यप्रदः ।
स ख्यातः किल विद्यया च सकले बुद्ध्या च भूमण्डले
चाणक्य श्चतुराननप्रतिनिधिः केषा न्न वाग्गोचरः ॥ ६

इत्युभयविद्यकथा ॥

अथोपविद्यकथा ।

तद्यथा । विद्या श्चतुर्द्दशैवोक्ता वेदाद्या स्तत्ववेदिभिः ।
चित्रेन्द्रजालनृत्याद्या उपविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

पूर्व्व मुपविद्यनागरौ शशिमूलदेवनामानौ सखायौ बभूवतुः । तौच गु
णदर्प्पौ देशान्तरदर्शनकुतूहलिनौ धरित्रीमण्डलं भ्रमन्ता वेकदा
कौशलाया म्पुरि कौमुदीनाम्नीं रूपयौवनवती मेकां राजकुमारीं दो

भाषानुवाद ॥

चौपाई ॥

नन्द विनाशक जनिकर रोष । वृषल राज्यप्रद जनिकर तोष ॥
विद्या मति बल जग भरि जान । से चाणक्य विरंचि समान ॥

इत्युभयविद्यकथा ॥

अथोपविद्यकथा ॥

चौपाई ।

विद्या चोदि चतुर्दश भेद । तत्वज्ञानी कहलनि वेद ।
चित्रइन्द्र जालादिक नाच । उपविद्या मैं ई सब वाच ॥ १

पूर्व्व उपविद्य मैं नागर शशि औ मूलदेव दुनू मित्र छलाह से पुन गुण गर्व्वित देशा
न्तर कुतूहली पृथिवी मण्डल भ्रमण करयित एक समय कौशलापुरी मैं कौमुदी नाम
कि रूपयौवनवती एक राजकुमारी योगनी मठ सौं अवस्थिति कां देखयित भेला तनि

गिनीमठा दागच्छन्ती ददृशतुः ता न्दृष्ट्वा मूलदेवः कामज्वरकातरो बभूव त न्तथाविधं स्मरवदनामूर्छित न्दृष्ट्वा शशी चिन्तयामास ।

सख्यं हि देहिनो रेकं देहमात्रविभिन्नयोः ।

य स्सख्यु स्सुखदुःखाभ्यां नाप्नोति सर्गत स्सखा ॥ २ ॥

ततो मम प्राणसमान स्सखा मूलदेवो राजकुमारीरूपेण मोहितः स न्दिग्धजीवनो भूतोस्ति तदास्य रक्षार्थं प्रतीकार ङ्करोमीति परामृष्य तन्नगरवासिनी न्तवर्णा मालाकारवधू मपृच्छत । अयि मालिनि केयं युवती किमर्थं योगिनीमठं यात्यायातिच । मालिन्युवाच । इयं राजकुमारी राज्ञा विवाहविधिना योग्यवराय दातु माकांक्षिता पिकमपि वर न्न स्वीकरोति किन्तु योगिनी मुपसर्प्पति योग मभ्यस्यति न ज्ञायते कोऽत्र हेतुः । शश्युवाच । मालिनि पुरुषं नाकांक्षतीति महदा श्चर्य्यम् । यतः ।

भाषानुवाद ॥

को देखि मूलदेव कामज्वर सौं कातर होइत भेला तनिका तेहन सन कन्दर्प्प वेदना मूर्छित देखि शशी चिन्ता करयित भेला ॥

दोहा ॥

देह भिन्न हो मित्रको जीव एक की प्राण ।

मित्रक सुख दुख मित्रकों की पुन सखा समान ।

ततय हमर प्राण समान मित्र मूलदेव राजकुमारीक रूप सौं मोहित सन्देह जीवन भेलछथि ततय हिनकर रक्षा निमित्त उपाय की करी ई विचारि योग्निगामक ततय ततहि रहनिहारि मालिनिकां पुछयित भेलाह अयि मालिनी के ई तरुणी कोन हेतु योगनी मठ जाइत अबइत छथि । मालिनि कहल ।

ई राज कुमारीकां राजा विवाह विधि सौं योग्य वरको देवक इच्छा करैछथि तथापि ककरहु वर नहि स्वीकार करै छथि कुमारी । किन्तु योगिनीक निकट जाइछथि योग अभ्यास करै छथि नहि जनैछी एतय कोनहेतु । शशीकहल । पुरुषकं नहि आकांक्षा करैछथि से बड़ आश्चर्य्य हेत ॥

वहिरन्तर्दिवारात्रौ स्वप्ने जागरणे तथा ।
आकांक्षति युवानं स्त्री पारतन्त्र्यात्र गच्छति ॥ ३ ॥

ततो भवती मां स्त्रीवेषधारिणं तस्याः कुमारिकाया सेवा कारयतु तदनन्तरं मालिनीगृहे मूलदेव मवस्थाप्य स्त्रीवेषधारिणा सर्व्वकला कुशलेन शशिलेखेति नाम परिगृह्य शशिना तस्याः परिजनतावलम्बिता कियतापि कालेन जातायां प्रत्यासत्तौ कुमारी मपृच्छत । भर्त्तृदारिके कुतोऽस्मिन्मदनमहोत्सवप्राये तारुण्ये भवत्याः संसारसुखोपेक्षा कुतो वा पुरुषेषु कुत्सा । राजकुमारी ब्रूते । सखि शशिलेखे कथा मिमां न प्रष्टव्यास्म्यहं भवत्या । शशिलेखोवाच । मया सन्निधानपरिचारिकया कथन्न प्रष्टव्या भवती यतः ।

पिताते स्नेहार्द्रः प्रभवति निजेनापि हृदये
निरुत्साहा माता क्षणमपि न खेदं विसृजति ।
स्वजं भृत्याभुक्ताश्रिय मिव परो वीक्ष्य भवती
मपत्यप्रारब्धं ध्रुव मनुचिते ताम्यति न कः ॥ ४ ॥

भाषानुवाद ॥

चौपाई ।

बाहर अन्तर दिन ओ राति । जाग्रत शयन दशा सभ भांति ।
परवश युवतिक मन हो आंट । ताकथि कामिनि पुरुषक वाट ॥ ३

ततय अहां हमरा स्त्री वेषधारण द्वारा तनि कुमारीक सेवा कराउ । तदनन्तर ताहि मालिनीक घर मैं मूलदेवकैं राखि सकलकला निपुण स्त्री वेषधारी शशिलेखा अपन नाम धराय शशीतनिक परिजनताक अवलम्बन कयल कतेक दिनगत सन्ता विश्वास ओ परिचय सन्ता कुमारी कां पुछयित भेला । अयि भर्त्तृदारिका कियक ई काम महोत्सव तारुण्य मैं अहांकां संसार सुखक उपेक्षा कियक वा पुरुष मैं निन्दा । कुमारी कहल । अयि शशिलेखा सखी ई कथा हमरा जनु अहां पुछीअ । शशिलेखा कहल । हम निकट निवासिनी दासी कियक नहि हम अपनेंकां पूछत ॥

चौपाई ॥

माय बाप कर बड़ मन शोच । अपनैं अयल कठिन संकोच ॥
भृत्य अपरिचित ओझन माल । सन्तति अन चित दुःख विशाल ॥ ४

ततः किं मूलकोयं तव प्रारम्भ स्तत्कथय यदि प्रतिकरणीयं भवति तदा प्रतिक्रियते नह्यज्ञाते व्याधौ चिकित्सावतरति यदि चाप्रतिक्रियमेव दुःखं तदा मिलित्वा सह्यते । तथाहि ॥

एकेना ङ्गीकृतो वोढुं दुःखभारो गुरुर्भवेत् ।
तथा ऽनेन लघुं कर्त्तुं सुहृद्भ्यो विनिवेदयेत् ॥ ५ ॥

तत्सुवासिनि कथय मे पुरुषापरिग्रहनिमित्तम् । कुमारिकोवाच ॥ सखि शशिलेखे त्व माम द्वितीयं हृदय मिव सहजस्नेहला सखी भवसि ततस्ते किन्न कथयामि शृणु ताव न्मम पुरुषापरिग्रहकारणम् ॥ पूर्व्वजन्मन्यहं प्रचुरदर्भाङ्कुरायां भूमौ चरन्ती कुरङ्गी स्थितास्मि स्वामी मम कृष्णसारो हरिणो मत्सन्निधाने तत्रैवासीत् पश्चात् सा स्थली मृगवधरसिकै र्व्याधै रागत्य जालेन वेष्टिता यदाहं पुष्टगर्भा सञ्चरितु मसमर्था स्वामिन मवादिषं रे मृग त्व मुत्फालसमर्थोऽपि जाल मुल्लङ्घ्य गच्छ क्वापि गत्वा जीव ममानुरागवद्धो मन्निमित्तं प्राणा न्न दास्यसि

भाषानुवाद ।

ततय कोन हेतुक एहारम्भ एहन से कहु जों उपाय कय सकब तों करबे नहि व्याधि जनला सों औषधक उद्योग उपाय नहि भय सकत तों सङ्गहि सङ्ग दुःख काटब ॥

चौपाई ।

भार उठावय जेहन कहार । जन अनेक मिलि की अति भार ॥
अपन सुहृद कों कहि नहि कान । लघु हो से के जन पुन जान ॥ ५

तें अयि सुवासिनि कहु पुरुषक ग्रहण निषेध निमित्त कुमारी कहयित भेलि अयि सखि शशिलेखा अहाँ हमर दोसर हृदय समान स्नेहवाली सखी थिकहु ततय अहाँ कां कीने कही शुनू तावत हमर पुरुषक अग्रहणक कारण ।

पूर्व्व जन्म में हम प्रचुर नव दर्भांकुरा भूमि में चरयित हरिणी छलहु स्वामी हमर कृष्णसार मृग तनिकां बहुत अनुराग हमरहि निकट ततहि रहैछ छलाह पश्चात् से भूमि में व्याध मृगरसिक आबि जाल लगौलक ताहि समय हम पूर्णगर्भा रहैं। संचरण में असमर्थ स्वामी कां कहल रे हरिण तोहरा फानवाक सामर्थ्य छो जालकें लांघि जो कतहु जाय जीव गय हमर स्नेहसो बांधल हमर कारण प्राण जनु दे तोर उपाय साध्य

तव प्रतीकारसाध्या सम्प्रति न मम प्रार्थना। स दुरात्मा तथापि पलायनसमर्थोऽपि न पलायितः ममानुरागबद्धः केवलं व्याधेन व्यापादितः। किन्तु मरणसमये मय्यर्पितदृष्टिः पद्यमिदं पठितवान्। तद्यथा

तौ कामाख्यव्यसनचतुरौ तौ कलानां विदग्धौ
सत्प्रेमाणौ सपदि शिवयोस्तौ तुलामाप्नुवन्तौ।
जातौ वंशे महति किल तौ धर्म्मशृङ्गारिणौ तौ
प्राणान्तेऽपि त्रुटति न ययो राज्ञ्योः प्रेमतन्तुः॥ ६॥

तत्परोक्षं त्वहं व्याधशरैरभिन्नैव स्वामिशोकभिन्नहृदया मृतास्मि ते न स्वामिभक्तिजन्मना पुण्येन जातिस्मरत्वमाप्य राजकुमारीवृतास्मि तदस्मिन् जन्मनि तैस्तैर्गुणैस्तस्य स्मरन्ती यत्नादपि तमनाप्नुवन्ती पुरुषान्तरमहं वीक्षितुं नोत्सहे किम्पुनर्व्वरयितुम्। शशिलेखोवाच। भर्तृदारिके स इदानीं क्वास्ति न जानाति भवती। कुमारिकोवाच।

भाषानुवाद॥

एखन नहि हमर रक्षा से दुरात्मा तैयो पलायन सामर्थ्यसन्ता नहि पड़ायल हमर अनुराग बद्ध केवल व्याधक हाथ प्राण देलक किन्तु मरणकाल हमरहि देखयित एक पद्य पढ़लक से सुनू॥

षटपद॥

से दम्पति कामाख्य व्यसन मैं चतुर कहावै।
सकल कलाक विदग्ध प्रेम गुण गुणि गण गावै॥
से दम्पति हर गौरि दिव्य उपमा कौं पावै।
महावंश मै जन्म धर्म्म शृङ्गार बढ़ावै॥
हमर तोहर प्राणान्त मैं प्रेमरज्जु नहिए टुटल।
लोचन लोचन मिलि मरब काल पास ककरा छुटल॥ ६

हुनक परोक्ष हम बिना व्याध शर लगलहि स्वामि शोकसौं हृदय विदिर्ण भय मुइलहु सेहे स्वामि भक्ति प्रभाव पुण्य सौं पूर्व्व जन्म वृत्तान्त स्मरण सौं एतहु राजकुमारी भेलिहो तैं एहि जन्मैं हुनक से से गुण स्मरण करयित यत्नहुसौं हुनि पुरुष कां विनु देखने अन्य पुरुषक दर्शनक इच्छा नहि कतय पुन तनिक वरन। शशिलेखा कहयित भेलि। अयि कुमारि सेएखन कतय छथि सेतहि अहांजनेछिऐनि। राजकुमारी कहय

जातिस्मरत्वेन पूर्व्वजन्मवृत्तान्तं स्मरामि इदानीं जन्मान्तरे कृतदेहान्तरपरिग्रहः कथं मया परिचेतव्य इत्यभिधाय रुरोद शशिलेखोवाच। भर्तृदारिके समाश्वसिहि२ दैवाधीनोऽत्र प्रतीकारः ततस्तेन स्त्रीवेषधारिणा शशिना सा कथा मूलदेवाय गत्वा कथिता।

स्वयं पुनरागत्य कुमारीसन्निधानमलभ्यत मूलदेवस्तु चित्रविद्यायां साभ्यासः तत्कथाश्रवणेन सकलहरिणवृत्तान्तं चित्रपटैकदेशे लिखित्वा द्वितीयप्रदेशे राजकुमारीमात्मानञ्च लिलेख पश्चात्तं चित्रपटं नीत्वा राजकुलमागत्य राजकुमारीन्दर्शयामास कुमारी तन्दृष्ट्वा पूर्व्वजन्मवृत्तान्तं स्मृत्वा रोदिति स्म तां रुदतीं दृष्ट्वा। शशिलेखोवाच। कुमारी भवत्या किं रुद्यते रे पापचित्रपटधारक धूर्त्त किं दर्शितवानसि येन सख्या मिन्या श्चेतसि कष्टमुत्पद्यते। कुमारिकोवाच। सखि न वक्तव्या परुषवागस्मै नायं पापी नवा धूर्त्तः किन्तु मम प्राणनाथोऽयमेवेति प्रतीहि। शशिलेखोवाच। कथम्परिचेतव्यः कुमारी अब्रवीत्।

भाषानुवाद।

हमरा पूर्व्वजन्मक तेहन नहि स्मरण से द्वितीय जन्ममें द्वितीय देहधारण कय कतय छथि से हम कोन तरह जनवैन्हि ई कहि मुक्तकण्ठसौं रोदन करयलगली। शशिलेखा कहल। अयि राजकुमारी चुप होउ२ दैव लागल बात अछि ततय से स्त्री वेषधारी शशी मूल देव कों जाय से से वृत्तान्त कहि आएल॥

अपने पुन आवि कुमारीनिकट रहय लगलाह मूलदेव सकल चित्रविद्यामें निपुण तनिक कथा श्रवण सौं सभटा हरिण वृत्तान्त चित्रपटमे लिखि द्वितीयपृष्ठमें चित्रपटक राजकुमारी ओ अपनस्वरूप लिखयित भेलाह। पश्चात से चित्रपट लयकय राजद्वार जाय राजकुमारीका देखवयित भेलाह ओ कुमारी से देखि। पूर्व्वजन्म वृत्तान्त स्मरणकय रोदन करयलगली तनिका कनयित देखि। शशिलेखाकहल। अयिराज कुमारी अहां कियककनैछी। ई पापी चित्रपटधारी धूर्त्त की देखौलकनि अछि जाहिसौं हमर सुवासिनीक मनमें कष्टउत्पन्न होइछैनिह कुमारीकहल। अयिशशिलेखा। नहि काहु कठोरवचन छिन्न का नहि ई पापी नहि ई धूर्त्त किन्तु हमर प्राणनाथ सैह जानि लिय। शशिलेखा कहल कोनगत परिचित। कुमारीकहल परिचित ई चित्रपट दर्शन द्वारा शशिलेखा कहल। चित्रकी धूर्त्त नहि दिखाए सकैछ। कुमारी कहल में ओ हमर जन्मान्तर कथा

परिचित स्वज्ञानेन छिन्नपटदर्शनेन । शशिलेखोवाच । छिन्नधूर्त्तः किन्दर्शयितुं न क्षमते । कुमारिकोवाच । क्षमते यदि जानाति मम जन्मान्तरकथां धूर्त्तः कथं जानीते । शशिलेखोवाच । यदि भवत्या क्वापि प्रकाशितं स्यात् तदा जानाति । कुमारिकोवाच । मया त्वय्येव प्रकाशितम् । शशिलेखोवाच । यत्स्वहृदि न प्रकाशितं गोप्यवस्तु मेवानेन प्रकाशितेन यदिद मन्यः कोऽपि जानाति तदा निश्चित मयमेव भवत्याः स्वामीति निर्णीय तदानीं मूलदेवः समाहूतः पश्चात्सर्व्वं निवेद्य तया कन्यकया तौर्य्यत्रिकपुरस्कारं मूलदेवस्य विवाहं कारयामास छिन्नविद्ययैव मूलदेवो लब्धमनोरथो बभूव । तथाहि ।

जायते न भुवि विद्ययाऽपिया वेदशास्त्रविदुषां महेश्वरात् ।
चित्रगीतकविताकलाविदां सापि सिद्धिरुपविद्यया भवेत् ॥ ७

इत्युपविद्याकथा ।

भाषानुवाद ।

जनै कथि तैं चित्रलिखनमें हम कथि धूर्त्त कोनतरह हमर जन्मान्तरकथा जानि सकैछ । शशिलेखा कहल । जौं अहां कतहु वाजलि होयब तैं जनैछ धूर्त्त । कुमारी कहल । हम तौं केवल अहींकां कहल । शशिलेखा कहल । हम अपनहु हृदय में नहि प्रकाशल एहन गुप्त वृत्तान्त प्रकाश कयल जे आन कें ओ नहि जनैछ तैं हमरो मन मानैछ जे ई अपनेक स्वामी ईं निश्चयसत्ता तखन मूलदेवक अतिशय आदर भेल पश्चात् सब वृत्तान्त लोक बुझलक ताहि राजकन्या सौं नाना वाद्य उत्सव पूर्व्वक मूलदेवक सङ्ग विवाहकर वाय देल चित्रविद्याहिसौं मूलदेव पूर्ण मनोरथ होइत भेलाह ॥

दोहा ॥

जेम सिद्धि हो ईश सौं बुधकां विद्यापाय ।
चित्र गीतिकविकोविदक उपविद्याक सहाय ॥ ७

इत्युपविद्याकथा ॥

अथ गीतविदरकथा ।

गीतेन विदरथा यस्तु प्रमोदयति जीविनः ।
गीताब्धिंतयशोराशि र्गीतविदर स उच्यते ॥ १ ॥

बभूव गोरखपुरे राजधान्यां उदयसिंहो नाम राजा स च सर्व्वगुणा ना मनुरागी विशेषज्ञो वदान्यश्च तेन गुणिन स्त माश्रयन्ति । एकदा कलानिधिनामा गायनः तीरभुक्तिराष्ट्रा त्तत्र जगाम राजदेवार्च्चन काले गीतानि गायन् स सर्वै स्सभास्थैस्तुतो राज्ञा काञ्चनैः पूजितश्च तस्य स्तवं श्रुत्वा पूजान्दृष्टा तद्देशीयगायना सर्व्वे सामर्षा बभूवुः तेन सर्वं वद्धस्पर्द्धा स्तन्निन्दा ञ्चक्रुः राज्ञ निवेदयामासुः । देवगायनोऽसौ विदेशी नाममात्रेण कलानिधि रस्ति गीतकला ज्ञामपि न जानाति देवः कथ मेनं पुरस्करोति ।

अविज्ञत्वं यथा राज्ञो गुणिना मपरिग्रहात् ।
परिग्रहा च्च मूर्खाणा न्तथा लोकेषु जायते ॥ २ ॥

भाषानुवाद ॥

दोहा ॥

जे गीतहि विद्यहि सुबुध । कर सब प्राणि सहर्ष ।
गीतार्णव यश भुवन में गीत विद्य उत्कर्ष ॥ १ ॥

छलाह गोरखपुर राजधानी में उदयसिंह नामक राजा से पुन सकल गुण अनुरागी विशेषज्ञाता ओ दाता तैं हेतु बहुत गुणीलोक ततय आबथि एक समय कलानिधि नामक गायक तिरहुति राज्य सौं ततय आबित भेला ओ राजाकां देवता पूजाक समय गीत गबइत सन्ता ओ सकल सभाक लोक सौं प्रशंसित राजा कांचन सौं पूजित भेला । तनिकां प्रशंसा सूनि ओ पारितोषिक देखि ताहि देशक गायन लोक अमर्ष सहित भेला तनिकां सङ्गै स्पर्द्धा बांधि निन्दा करयित भेला । राजाकां कहल । हे महाराज कलानिधि विदेशी नामहि सौं अछि गीत कला कीनो नहि जनैछ महाराज अपनैं कियक अतिशय आदर करैछी ॥

दोहा ।

जतय गुणिक सम्मान नहि मूर्खक हो सम्मान ।
नृपक अयश होइछ ततय कहथि नीति विधान ॥ २

राजोवाच। अरे गायना एतस्य गीतेन मम हृदय ममृतसम्भावित मिव भवति यूय मनुभवविरुद्धं किं वदत यदयं गुणी नास्ति। गायनाऊचुः तर्हि मध्ये सभं तस्यास्माकञ्च गीतकलां विचारयतु देवः। राजोवाच। कलानिधे देहि त्व मेषां वचस्युत्तरम्। कलानिधिरुवाच। देव नायं प्रत्युत्तरस्यावसरो न गानसमयः। यतः।

श्रोता यदासौ हरसिंहदेवो गाताहमास्म नृपते तदैव।
मधा वतीते मधुरस्वरेण न पञ्चमं गायति कोकिलोऽपि॥ २॥

अपिच। यच्कर्णपानत्यसुधारसेन श्रोतार माराधयति स्वरेण।
स्वर्गस्थ तत्वं त्रिदशा वदन्ति भूमावहं गायन एक एव॥ ३॥

गायना ऊचुः। देवमहान स्यमद स्तद्विचारयतु भवान्। राजोवाच। अहोतीरभुक्तीयाः स्वभावाद्गुणगर्व्विणो भवन्ति। कलानिधिरुवाच।

भाषानुवाद॥

राजा कहल अरे गायन हिनक गीत सौं हमर हृदय अमृत संभ्रावित सन होइछ तैं उचित हिनक आदर हम करैछी तोहरा सबहि प्रत्यक्षे विरोध कथा की वजैछह जे ई कलानिधिगुणिए नहि। गायक लोक उत्तर देल। तौं सभा मध्य तनिक हमरा सबहि कगीत कलाक विचारकयलजाय अपनहि महाराज। राजा कहल कलानिधि दिऔनि एते गोटाक वचनक उत्तर। कलानिधि कहल नहि सम्प्रति ई हमर उत्तरक अवसर नहि गान समय हेतु॥

दोहा।

श्रोता जौं हरसिंह नृप गायक हम तहि ठाम।
गत वसन्त कोकिलक स्वर नहि पंचम अभिराम॥ २॥

सोरठा॥

जे स्वर सुधासमान श्रोता जन मन हरण कर।
स्वर्गतक्ष विज्ञान त्रिदश भूमि गायक हमहि॥ ३॥

गायनलोक कहल हे महाराज महान गर्व्व हिनक से अपनहि विचारल जाय। राजा कहल। आश्चर्य तिरहुतिया स्वभावतः गुणगर्व्वित होइ छथि। कलानिधि

देव नाहं गर्व्वी किन्तु यथार्थं निवेदयामि मया गातव्यं भवदीयैश्च गायनै र्गातव्यं तदुभयगीतविशेष एकेन विचारणीयः।

हरोवा हरसिंहोवा गीतविद्याविशारदौ।
हरसिंहे गते स्वर्गं गीतवित्केवलं हरः ॥ ४ ॥

यदि परमेश्वर स्साक्षा दागत्य विचारयति तदाहं स्पर्द्धया गायामि। गायनाऊचुः। देव परमेश्वरो भगवान् दुर्लभ एव अन्यमध्यस्था न्नायं स्वीकुरुते ततो मध्यस्थापरिग्रहः कलानिधेः पराजयलक्षणं दृश्यते कलानिधिरुवाच। एवञ्चेदुष्माभि र्देव स्वीक्रियतां मध्यस्थकृतस्याग्रेगास्यामि। गायनाऊचुः।

एतद्देशीयोऽयं त्वत्पक्षपाती ज्ञातव्यः ततो गीतविदो हरिणा एव भवन्ति ते पशवः कस्यापि पक्षपातिनो न भविष्यन्ति तेषा मग्रे गास्यामः। कलानिधिरुवाच। हरिणाः पशवो गीतरसलम्पटा येन केनापि

भाषानुवाद ॥

कहल। हे महाराज नहि हम गर्व्वी किन्तु यथार्थ निवेदन करैछी हमहु गबैछी अपनैक गायन लोकगावथु तकर दुहुक विशेष के विचार करत हेतु ॥

दोहा ॥

की हर की हरसिंह नृप गीति रीति विज्ञान।
स्वर्ग गेला हरिसिंह पुनि छथि गौरीश महान ॥ ४ ॥

जौं परमेश्वर साक्षात् आवि विचारथि तौं स्पर्द्धा पूर्व्वक हमगान करी। गायनलोक कहल। हे महाराज परमेश्वर भगवान दुर्लभ अन्यव्यक्ति केओ साक्षीये नहि स्वीकार करैछथि तेहि हेतुसौं कलानिधिक पराजयक लक्षण लक्षित होइछ। कलानिधि कहल एहन जौं तौ अहां सबहि स्वीकार करु मध्यस्थकृतक आगा हम गायब। गायन कहल ॥

एहि देशो तौं हमर पक्षपाती बुझब तौं गीत रसवेत्ता हरिणगण होइछ से पशु ककरो पक्षपाती नहि हयत तकरहि आगा गायब। कलानिधि कहल। हरिण तौं गीतरस

गीतेनापहृता भविष्यन्ति यदि पशवो मध्यस्थाः स्वीकर्त्तव्यास्तदा गावो भवन्तु मध्यस्थाः । एवमुभयानुमत्या गावो मध्यस्थाः कृताः राजा च कुतूहली बभूव । व्यवस्थेयं यत्तृषार्त्ताः पानीयमुद्दिश्य गच्छन्तो यस्य गीतेन पानीयपानं परित्यज्य जलाशयनिकटात् गीतरसलोभेन निवर्त्तन्ते स एव गायनः पूज्यो भवति पश्चात्तथा क्रियमाणे विचारे कलानिधिना जितं राजपूजा च लब्धा ॥ श्लोकस्तु ॥

अवशहृदयवन्तं जीवितंजीवलोके
पशुमपि परितुष्टंगीतविद्या करोति ।
पशुजनपरितोषे यस्य विद्या समर्था
प्रभवतिपरितोषस्तद्विदांकिन्नतस्मात् ॥५

इतिगीतविद्यकथा ॥

भाषानुवाद ॥

कपट जकरे तकरे गीत सों मोहित होइक जों पशु ए मध्यस्थ अङ्गीकार तौ गाय मध्यस्था होथु एहन दुहुजन अनुमति सों गाय मध्यस्था कैलिगेली राजा कुतूहली होइत भेला व्यवस्था एहनि । जे तृषार्त्ता गाय जलाशय देखि सञ्चरलाय से जनिक गीत श्रवण सों पानीय पान त्यागि जलाशय सों निवृत्त हो से गायन पूज्य होथि पश्चात् तेहन करहिं सन्ता कलानिधि जीतल राजासों सम्मान पाओल ॥

पशुसन जन मन हरण कर गीत विद्या जन नाम ।
पशुतोषक विद्या जनिक तनिक तोष कठाम ॥ ५

इतिगीतविद्यकथा ॥

अथनृत्यविद्याकथा तद्यथा ।

गेयाभिनेयकाव्यानां विद्यानां त्वालगर्व्विता ।
रसानां आश्रयो नित्यं तेन तुष्यति शङ्करः ॥ १
भरतस्तु। द्रुहिनु श्रूयते ब्रह्मा शक्राद्याऽभ्यर्थितः पुरा ।
आकाराऽऽकृष्य वेदेभ्यो नाट्यवेदन्तु पञ्चमम् ॥ २
ऋग्भ्यः पाठ मभूद्गीतं सामभ्यः समपद्यत ।
यजुर्भ्योऽभिनया जाता रसाश्चाथर्व्वणः स्मृताः ॥ ३
तत्रनृत्यं द्विविधं तथाच भरतः ।
स्त्रीनृत्य मुच्यते लास्यं पुन्नृत्यन्ताण्डवं तथा ।
गौरी तुष्यति लास्येन ताण्डवेन महेश्वरः ॥ ४ ॥

भाषानुवाद ॥

अथनृत्यविद्याकथा ॥

दोहा ॥

गान काव्यविद्या सकल रस आश्रय थिक गांच ।
ताते हर्षित नित तोषयुत जे हिशों रस सुखपांच ॥ १

चौपाई ॥

भरतवचन । पूर्व्व काल विधिसों अमरेश । कयल प्रार्थना रचि तेहि देश ॥
सकल वेद सों अयल अहार । पंचम वेद नाट्य व्यवहार ॥
ऋकसों पाठ्य सामसों गीत । अभिनय यजुर्व्वेद सों रचीत ।
रस अथर्व्व सों भेल संचार । नृत्य द्विविध से कयल विचार ॥ ३
स्त्रीक नृत्य से लास्य कहाव । ताण्डव पुरुष नृत्य युत भाव ।
गौरीकां प्रिय लास्ये नीक । शंकर कां ताण्डव प्रिय थीक ॥ ४

भरतोप्याह । न तच्छास्त्रं न तच्छिल्पं नसा विद्या न साकला ।
न तज्ज्ञानं नवा योगो नाटके यन्न विद्यते ॥ ५

ततश्चाक्षप्रीतिहेतुत्वाददृष्टफलहेतुः प्रीतिहेतुत्वात् दृष्टहेतुत्वञ्चेति दृष्टादृष्टसुखदं नाटकं भरतोऽपि तथैवाह तद्यथा ॥

लीलेयं धनिनां धृतिस्तु सुखिनां शिक्षा प्रमत्तात्मनां
संसारस्थिति रीदृशीति विरति र्ज्ञानां विधा योगिनाम् ।
प्रीतिः काव्यरसाशिनां नवनवा कीर्त्तिष्कवीनामियं
विद्यानाटकसंज्ञिका भगवती विश्वोपकारक्षमा ॥ ६

बभूव गौड़देशे लक्ष्मणसेनो नामराजा तस्योमापति र्नाम मन्त्री गन्धर्व्वनामानटश्चासीत एकदा राज्ञः सर्व्वावसरे स नट कृतस्नानः चन्दनबिन्दुभूषितललाट स्सभामाजगाम तं दृष्ट्वा मन्त्रिणा कौतुकेनोक्तम् । अये

भाषानुवाद ॥

दोहा ।

शास्त्र न शिल्प नहि से विद्या न प्रधान ।
कला न योग न ज्ञान से जे नहि नाट्य विधान ॥ ५

ततय मङ्गादिक प्रीति हेतु सों अदृष्ट फल द्रष्टाक प्रीति हेतुसों दृष्टहेतुत्व पुन दृष्ट अदृष्ट सुखदनाट्य कहल भरत ॥

नरेन्द्रछन्द ॥

लीला ई धनि जनक सुखी धृति मत्तक शिक्षा जानक ।
संसार स्थिति एह नि अदृषि ई विरति योगि मन मानक ॥
काव्यरसिक जन प्रीति कीर्त्ति थिक सुकविकँ नाटक विद्या ।
संसारक उपकार कारिणी भगवति थिकि अनवद्या ॥ ६

भेलछलाह गौड़देशमे लक्ष्मणसेन नामकराजा तनिकाउमापति नामक मन्त्री औ गन्धर्व्व नामक नर्त्तक छलथिन एकसमय राजाक सकल अवसर सभामें ओ नर्त्तक स्नान कयके चन्दन बिन्दु सों शोभितललाट ततय अवइतभेला। तनिकाँ देखि मन्त्री कौतुक

गन्धर्व्व सविन्दुमौलि दृश्यते तत्किं नटं। गन्धर्व्व उवाच। उमापतिधर पश्यसि कण्ठे चन्दनविन्दु तस्मान्नटोऽस्मि। ततो राजा स्मेराननो बभूव। मन्त्री उमापतिधर स्सकोप अये अधम नट चारण जयाजीव कथमेतादृशः प्रगल्भवाग्वदसि तव ज्ञानेनाहं उमापतिधरः तत्किं मनड्वान् भवामि। नटउवाच। भवता प्युक्तं यथा ककारः शिरोविन्दुना कं भवति तथा त्वं नट मिति नटं च कुपठितं मूर्खं क्लीव ष्वाभिधत्ते। तदुत्तरं मया कृतं यदहं विन्दुद्वयात्मकेन विसर्गेनोपेनाऽलंकृतः कट्वटः सर्व्वज्ञोऽस्मि। उमापतिधरउवाच। सर्व्वज्ञोसि तर्हि नाटय भवभूतिकविकृतस्योत्तरचरितनाटकस्य छायाऽभिधानः मङ्क माश्रित्य रामचेष्टितम्। नटउवाच। नाटयिष्यामीति स राजा सकौतुकं न्तस्मै मसीसम्भृति न्ददौ पश्चाद्वृत्तेच रङ्गाऽवसरे रामभूमिकां परिगृह्य नृत्य मारेभे। नृत्यञ्च सीतास्पर्शनार्थी स्पर्शमनासाद्य भूमौ निपतितो रामतादात्म्यात्तनुं त्यक्त्वा मुक्तो बभूव।

भाषानुवाद ॥

सों कहल आचो गन्धर्व्व विन्दुसहितभाल अहाँक देखला जाइछ तँकी अहाँ नटं। गन्धर्व्व उत्तर देल। उमापतिधर देखू हमरा कण्ठमें चन्दन विन्दु तत नटः हम छिकहु राजायुनि ईषतहसितमुख होयितभेला। मंत्री उमापति धरक्रोध सों कहल। रे अधम नर्त्तक चारणयुवतीजीवकीना एहनप्रौढकथावजलें तोहरा ज्ञानें हम उमापति धरछेकी वृषभ थिकहु। गन्धर्व्व कहल। अपनहु कहल जेना ककार मस्तकपर विन्दु सोंकं होइछ तेहिना नटं तोह नटं कुपठितंमूर्ख नपुंसक कहल जाइछ। तकरउत्तर हम कयल जे विन्दुद्वयभेल विसर्ग ताहिसो भूषित जेना कः तहने टः नाम हमसर्व्वज्ञ थिकहु। उमापति धर कहयितभेला सर्व्वज्ञछहतों नाचह भवभूति कविकृत उत्तरचरित छायाभिधान अंकक आश्रयणाकें रामचेष्टित। नटउत्तरदेल नाचब। राजा कौतुकसहित तनिकां मसीसंभृति दयितभेला पश्चात सम्यक नृत्य सामग्री सन्ता आङ्क अवसरमें रामक स्वाङ्ग ग्रहणकी नृत्य आरम्भ कयल॥

नचयित पुनि सीतास्पर्शनकाम स्पर्श अप्राप्त सन्ता भू भिमे खसयित भेला। राम हम एहन अपनामें सत्यभावनासों शरीर त्यागि मुक्त होयित भेला॥

श्लोकस्तु। सोऽरण्यग्रामान्तो सकट विटपा छन्द सैव स्थलीयं
सीता सैव स्पृशति हृदयं सोह मेवा स्मि रामः।
एवं कान्ता विरह विलप न्नामतादात्म्यदिग्धो
नृत्यावेशा न्मुनि रिव नटो विष्णु सायु ज्यमाप॥

इति नृत्यविदग्धकथा।

भाषानुवाद॥

कुण्डलिया।

सैह विपिनवटवृक्षसे स्थल भल सैह विशाल।
सैह राम हम जानकी सैह थिकथिएहिकाल॥
सैह थिकथि एहि काल हृदय करथित छथि स्वधीन।
सैह मनोहर देश वेश जोथित अछि दर्शन॥
कान्ता विरह विलाप करत नट मचथित जैह।
रामचन्द्र तादात्म मुक्ति कों पाओल सैह॥

इतिनृत्यविद्या कथा।

अथेन्द्रजालविद्यकथा ॥

वस्तुन्यप्यऽतथाभूतेतथाभावप्रदर्शनम् ।
इन्द्रजाल मिति प्राहु स्तद्विद स्त्वैन्द्रजालिकाः ॥ १

आसीत् *सिम्बलिवनेपद्मधरपण्डितो नाम ब्राह्मणःसचेन्द्रजालविचक्षणः। कुतूहलावसरे राजानं परितोषयति आश्चर्य्यञ्चकुरुते। एकदा कस्मिन्नप्युत्सवे राजदेवनाम्ना राजश्वशुरेण राजानिमन्त्रितः। राजा निमन्त्रणं स्वीकृत्य कृताह्निकः राजस्वभावात् सुखी क्षुधाऽसहिष्णुः पा

भाषानुवाद ॥

अथेन्द्रजालविद्यकथा ॥

वस्तु असत्य सत्य हो भान इन्द्रजाल से कहथि महान।
से जे जानथि तनिकर नाम इन्द्रजालि कहइछ सभठाम ॥ १ ॥

रहथि सिम्हला वनमे पद्मधर नामक ब्राह्मण से पुनि इन्द्रजाल विद्याक पण्डित कुतूहलक अवसर राज़ा का प्रसन्न करथि आश्चर्य्य करथि एक दिन कोनो उत्सवमे राज देव नामक राजाक श्वशुर राजा का नेओत देल राजा नेओत मानल मानि नित्यकर्म्म कय राजाक स्वभाव सुखी क्षुधा सहिनहि पाकक अपेक्षा निरपेक्ष घोड़ा चढ़ि दिन

* (सिरिहला) प्रसिद्ध सिङ्हलावन मिथिला मे जंदरी महल्ली प्रगन्नामें वलिराजगढ़ के निकट है जहां श्रीवलदेवजी ६० वर्षनिवासकिया थास्यमन्तक मणिके हेतुसें दुर्य्योधन गदायुद्ध जहा आकर पढाथा क्षेमधूर्त्ति जलसन्ध महारथी भी जहा वसताथा जो। कर्णपर्व्व महाभारत में कथा है।

धृतराष्ट्रं प्रति वैशम्पायनवचनम्।
तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्त्ति र्विशाम्पते। निहतोगदयाराजन् भीमसेनेन संयुगे ॥ १
तथाराजन् महावाहो जलसन्धो महाबलः। सुमहत्कदनं कृत्वा हतः सात्यकिनारणे। २
तत्रजलसेनग्रामोस्त्येव
शंकरवासस्तयोः शंकरवातस्तौ भवतः। पद्मधरप्रतिपक्षो कश्चो भूतो न भूतलेक्वापि। ३

* पद्मधरमिश्र यह वह नहीहै जो मैथिल शोदरपुर श्रोत्रियाल वडेभारी पण्डित न्याय चिन्ता मणि के उपर आलोककर्त्ता भये वंगदेशमें शिरोमणिभट्टाचार्य्य इनहीके छात्रथा राजाहरिनारायण प्रसिद्धभैरवदेव की सभापण्डित १३५० शाकामें विद्यमानथा॥

वलदेवजी के मिथिला निवास वार्त्ता हरिवंश में॥

सत्राजित सूर्य्य से स्यमन्तक मणि लाभ किया जो मणि प्रभाव से लोकमें भासित सूर्य्य जैसा होने लगा वह रत्न राजा प्रसेन नाम भाई को दिया जो रत्न से सुवर्ण उत्पन्न होता था औ समय के उपर सुवृष्टि होते थी जो मणिको अभिलाषी श्रीकृष्णजीभये वहरत्न श्रीकृष्ण को लाभ नही भया बलो होकर भी हरण नहीं कर सके कोई समय उत्तराजा ऋक्षवान् विन्ध्यपर्व्वतमें अश्ववार होकर सिकारको गया स्यमन्तकमणि लोभ से एक सिंह देहरूप प्रसेन राजाको मार मणि ले लिया सिंह को भी मार जाम्बवान पर्व्वतकन्दरा में प्रवेश किया। परस्पर जनरव होने लगा प्रसेनराजा का पता नहीं मणिलोभसे तर्क होता है श्रीकृष्ण प्रसेन को मारा औ मणि ले लिया श्रीकृष्णजी यह मिथ्या कलंक कलुषित होकर जंगलको गये जहां अश्व सहित मरा प्रसेनका देह देखा पता से निश्चय हुआ महान्‌ऋक्ष राजाकोमारा श्रीकृष्णजी ऋक्षके निवास गुहामें प्रवेश करतेही यह शब्द सुना सिंह प्रसेनको मारा सिंह को जाम्बवान मारा है कुमार रोना नहीं मणि अब तों तुमारा है। यह स्त्री सुभाषित सुनतेही महागुहा की भीतर आप गये बलभद्र आदि सैन्य बिल के द्वारा में छोड़ दिया जाम्बवान के साथ एकविंश वार बाहु युद्ध भया बलभद्र आदिक सैन्य श्रीकृष्णजी से निराश द्वारका गये जाम्बवानको श्रीकृष्णजी जीतकर मणि लिया औ जाम्बवती पति भये जाम्बवान अनुमतिसे। सभा में पहुंचकर सत्राजित को मणि दिया निकलंक भये सत्राजित सत्यभामा नामकी कन्या श्रीकृष्ण को दिया। सत्राजित से शतधन्वा राजा पूर्व्व उक्त कन्या लाभ की प्रार्थना की थी सत्यभामा अलाभ मूल वैर से रात में सत्राजितको मार मणि लेकर अक्रूर को सोंप सपथ कियागया मणि चोरी की वार्त्ता प्रगट न होवै वह समय में श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में थे पाण्डव लोक अस्थि संस्कार कल्याण निर्म्माण के हेत से सत्यभामा रथ पर चढ हस्तिनापुर पहुंचकर पिता मरण औ मणि हरण विवर्त्त श्रीकृष्णजी को निवेदन किया श्रीकृष्णजी द्वारका पहुंच बडे भाई बलभद्रजी से कहा सिंह मारा प्रसेन को सत्राजित को मारा शतधन्वा वह मणि को अब हम स्वामी हैं रथ पर चढे। सत्वर भोज को मारै स्यमन्तक आप को होगा युद्ध से शतधन्वा भागा एक घोड़ी शत योजन गामिनी को ऊपर सवारहोकर जब घोड़ी थकी तब श्रीकृष्णजी निर्व्वाहन को कर शतधन्वा को मारा बहुत मिथिला में खोज किया स्यमन्तक नहि पाया। जब बलदेवजी पुछा स्यमन्तक कहा है हम को मिलना चाहिये श्रीकृष्ण कहा स्यमन्तक नहीं मिला यह सुनकर कपट जानके क्रोध से कहा तुम को धिक्क है भाई हो दूससे हम छोड़ दिया हमको द्वारका से तुमसे प्रयोजन नहीं औ कपटी परिवार से प्रयोजन नहीं इत्यादि कह मिथिला में मिथिलेश राजा सत्कार से रुक्माङ्गद गढमें प्रथम निवास रखा तबसे उक्त गढ को नाम कोपगढ भया। ३० वर्ष बीते कृष्ण प्रमुख यादवों बहुत प्रार्थनाकर द्वारका ले गये॥

वलिराज गढ ओ देॱमगढ भी प्रसिद्ध है इसके यहा हमको लिखना पड़ा वहुतलोक उक्त गढ के समय कौन वलिराज यह निरूपण में शिथिल प्रयास होते है। स्कान्दपुराण में सह्याद्रिखण्ड के ३५ अध्याय में कथा यह है परशुराम क्षत्रिय का अनेकवार अन्त किया था चन्द्रवंशी में पद्मावती देवीकी भक्ति सौनकमुनि से उत्पन्न क्षत्रिय मे वलिराज वीसमा २० राजा मिथिलेश था ॥

उक्तगढ मिश्रावली मिसरौली विद्यमाना है जहा मिश्र लोक राजगुरु वसते थे ॥ यहमिश्र हरिताम्र (हरिभय) (हरिअभय इत्यादि लेख प्राचीन पुस्तक में देखते है मिश्रावली निवासी हरिअमय वलिराजपुर, हरिअभय मंगरौना, हरिअमय शिवा, हरिअभय रखवारी, कोश डेढ कोस मे सबग्राम श्रो ब्राह्मण वसते है केशवपतिमिश्र वनमाली मिश्र श्रो पीताम्बर एलोक वृहस्पति समान पण्डितथे पीताम्बरमिश्र का सन्देहभेदिका दुर्गा टीका श्रो किरात चन्द्रिका है। यांचन्द्रिका मिश्रकरोति किरातकाव्येपीताम्बरश्च हरिताम्रकुलप्रसूत: ॥ इत्यादि ॥

हरि ताम्र वंश के रघुदेव मिश्रजी दिल्ली यवन सम्राटसे सरस्वती उपाधि उपार्ज्जन किया खण्डवलाकुल शेखरीभूत महेशठाकुर के पुत्र अचुत ठाकुर के पुत्री कुसुदिनी देवी श्रो श्रोत्रियकुलालंकार विश्वेश्वर मिश्रके पुत्रथे न्याय में अनेक ग्रंथ है श्रो विरुदावली ग्रंथ मिथिला मे इनही का प्रचार है हरिअमय वलिराजपुर ब्राह्मण श्रोत्रिय महामहोपाध्याय सचलमिश्रजो पुना में समस्त पण्डितविजय में अनेक ग्राम श्रो सत्कार वाजीरावो पेसवा से पाया था। गोवर्द्धन सप्तशती पर उक्त पण्डितजीका एक टीका है। जिस आदि में यह श्लोक है ॥

हरिमयकुलजात: श्रोत्रियेषूत्तमेषु
सचलइतिजनायं भारतीया वदन्ति।
सरसिकजनचेतोहारिणीं भावहृद्यां
विवृति मिश्रभवानीनाथ नामाकरोति ॥ १

वलभद्रजी के निवास के हेतु से वलायन, नाम वलदेवजी के निवास। सिंहलावन मे सरोवर है। जिस से एक छोटी नदी निकली है नाम वलायनी कहलाती है। वारह महीना १० कोस तक जिसके पानी से कृषी होती है। दो नदी पूरव पश्चिम निकट निकटमे जो है वह भी वलायन कहलाती जहा वल, नाम सैन्यका निवासथा मिथला मे उक्त नदी की नाम पुराण श्रो तंत्रो में नामान्तर (वर्त्तनी) विख्यात है वलिराजपुर गढ के निकट एक मदनेश्वर महादेव है जो वलिराजका दादा मदन का स्थापित है गाम भी मदना है ॥

पद्मावतीदेवी सौनल्य मुनि ॥

१ यदु	११ सोमनाथ
२ भास्कर	१२ महाकाल
३ सुवय	१३ दुन्दुभि
४ गर्ज्जन	१४ विस्वराज
५ दण्डधारी	१५ देवक
६ खड्गधर	१६ अनिरुद्ध
७ श्रीवदन	१७ गोपति
८ नागराज	१८ मदन
९ गुणराज	१९ सुनेत्र
१० शिव	२० बलिराज

मौजे शाहो प्रगन्ना हावीमें सन १२८१ शाल मैं पोखर खोदते अनेक अपूर्व्व २ प्रतिमा निकली जो संप्रति हावीडीह जो पूर्व्व हावी पट्टन था वहा धरी है तिस मैं एक लक्ष्मी नारायण प्रतिमा शिला मैं लेख श्रीमाब्दनमाधवः ॥

कापेक्षा निरपेक्ष एव तुरगमारुह्य दिवाप्रथमप्रहरे भोजनार्थी श्वशुर
गृहम्प्रचलितः। तदवगत्य राजदेव श्चिन्तयामास यदयं राजा जा
माता परममान्यो भोक्तुमायाति ममगृहे पाकस्सम्पन्न एव नास्ति तत्
किंकरवाणि त न्तथा चिन्ताकुलं दृष्ट्वा पक्षधरपण्डितउवाच। रे राज
देव त्वया न भेतव्यं न भविष्यति तव लघुत्वम् राजानमानेतु महङ्गच्छा
मि तत स्तथा कौतुकं दर्शयितव्यो मया वर्त्मनि राजा यदा पाके सम्प
न्ने तव गृह मागमिष्यति पश्चा त्तथोपाये पक्षधरमिश्रेण क्रियमाणे रा
ज्ञा पथि द्वौ मेषौ युद्धं कुर्वाणौ च दृष्टौ। तयो र्युद्धे विश्रान्ते द्वौ
मल्लौ परस्परं युद्धस्पर्द्धमानौ च दृष्टौ ततो बककवलगिलितपलायित
शफरीकदम्बकोद्वर्त्तिचमत्कारीनदीनिर्झरो दृष्टः पश्चा त्सारमेयै रनु
गम्यमानः कुरङ्गो दृष्टः तद्दर्शनकौतुकेन तावत्काल स्तस्य महीपते र्व्व
र्त्मन्येवातीतो याव द्राजदेवगृहे सव्यञ्जन मन्नं सिद्धमभूत् तदनन्तरं
तेनाऽऽहूय मानो राजा भोजन ञ्चकार मेषयुद्धादिकं मृषैव मया दृ

भाषानुवाद ॥

क पहिलहि प्रहरमें भोजन हेतु श्वशुरक घर बिदाय होयित भेला से बुझि राजदेव
चिन्तातुर होयित भेला ई राजा जमाय परममान्य भोजनहेतु अबैछथि हमर घर पाक
सम्पन्न नहि भेल अछि से हम की करब तेहन चिन्तातुर देखि तनिकाँ ततय पक्षधर
पण्डित कहयित भेलथिन रे राजदेव तों जनु भय करह नहि होमय पायोत तोहर
लघुत्व राजा कैं अनैयाति हमहि लायब ततय तेहन २ कौतुक देखैबैनि हम बाट मे
राजा जना पाक सम्पन्न सन्ता तोहरा गृह अयताह पश्चात् तेहने उपाय पक्षधर पण्डि
त कयलनि राजा दुइ भेंडा लड़ि रहल अछि से देखल तकर युद्ध विश्रान्त सन्ता दुइ
मल्ल परस्पर जयाभिलाषी युद्ध करैत देखल तदुत्तर बक गल गिलित पलायित शफरी
समूह सौं चमत्कारी नदीक निर्झर देखल तदुत्तर कुक्कुर अनेक सौं भयार्दित पलायि
त हरिण देखल ई सभ दर्शन कौतुक सौं तावत समय ताहि राजाक बाटहि व्यतीत
भेल यावत राजदेवक घरमे व्यञ्जन सहित अन्न पाक सम्पन्न होइत भेल तदनन्तर पक्ष

ष्टमिति ज्ञात्वा साश्चर्य्यो रत्नै स्त मिन्द्रजालविद्याविज्ञ पक्षधरपण्डित म्पूजयामास। श्लोकस्तु।

राजा ददाति रत्नानि बुधाः पश्यन्ति विस्मिताः।
ऐन्द्रजालिकविद्याभिः के भवन्ति न मोहिताः॥ २॥

इतीन्द्रजालविद्यकथा।

अथ पूजितविद्य कथा।

सा विद्या निरवद्या वा विज्ञभूपालपूजिता।
भूतये यशसे चैव विद्या भवति तद्विदाम्॥ १॥

बभूव धारायां म्पुरि भोजदेवो राजा तस्य पुरतः केनापि पद्य मेकं पठित न्तत्र तत्समयकवेः पद्यम्।

भाषानुवाद।

धरमिश्र सौं आनीत भोजन करयित भेला मेष युद्धादिक मिथ्या देखल ई जानि आश्चर्य्य मानि इन्द्रजालक पण्डित पक्षधरमिश्रक बहुत सत्कार कयल राजा।

दोहा॥

राजा दाता रत्न धन पण्डित विस्मित ताक।
मोहित के नहि देखि छो इन्द्रजाल विद्याक॥ २॥

इति इन्द्रजाल विद्य कथा।

अथ पूजित विद्य कथा।

विज्ञ भूपसों पूजिता उत्तम विद्या नाम।
यशस्करी धनदायिनी पण्डित कां सवठाम॥ १

कहाइ धारापुरी मे भोजदेव राजा तनिकां आगां कीओ एक श्लोक पढलक सेजे चन तात्पर्य्य।

क्षीरोदीयन्ति सद्य स्सकलजलधयो वासुकीयन्ति नागा:
कैलासीयन्ति शैला दिवि च द्रिविषद श्शङ्करीयन्ति सर्व्वे ।
यौष्माकीणे समन्ता त्प्रसरति भुवने शुद्धकीर्त्तिप्रताने
मद्गोषाकाचभूषा: किमिति न सहसा मौक्तिकीयन्ति भोज ॥२

तदा कर्ण्य तेन राज्ञा भोजदेवेन काव्यकलापरितुष्टेन तस्मै कविराजाय तत्तुला स्परिपूर्य्य सहापरिमाणानि मुक्ताफलानि दत्तानि ताश्च मौक्तिकतुला मादाय स कविः कृतार्थो बभूव भोजराजस्य कीर्त्ति रिय मद्यापि गीयत एव मेदिनीमण्डले । तथाहि ।

किं राज्य मविदग्धस्य किं वैदग्ध्य मयच्छतः ।
किं दानं तद्वदान्यस्य येन नाभ्यर्च्चिता गुणाः ॥ ३ ॥

भाषानुवाद ।

कुण्डलिया ।

सभसमुद्र जनु क्षीरनिधि पन्नगपति सबनाग ।
सकल शैल कैलास सन अमर शम्भु सन लाग ।
अमर शम्भु सन लाग भुवन भरि कीर्त्ति प्रताने ।
दश दिश प्रसरित भेल सर्म्भ एकरके जाने ।
चमर घरनि करकाच अलंकृत नहि मुक्ताप्रभ ।
मन मन गुण आश्चर्य्य नगर घर घर नारी सभ ॥२

सेसूनि सेराजा भोजदेव काव्यकला परितुष्ट ताहि कविराज तुलातुलित वृहत् परिमाण मुक्ताफल देल सेमुक्ता तुला पावि कविराजकृतार्थ होयित भेला भोजराजक कीर्त्ति ई अद्यावधि पृथिवी मण्डलमें गान होइतहि अछि दृष्टान्त ।

दोहा ।

राज्य प्राप्तिको अबुधको कौबुध करथिन दान ।
से दाता को दान की गुण अर्चन नहि जान ॥३॥

अपिच । या कोटिशः सुरलता विजिगीषु रेषा
जाम्बूनदानि फलतिस्म कला कवीनाम् ।
भोजे गते त्रिदिव मुज्ज्वलकीर्त्तिराशौ
सैवाऽधुना प्रतिपदं श्रममात्रसारा ॥ ४ ॥

इति पूजितविद्य कथा ।

अथ प्रत्युदाहरण कथा । तत्रावसन्नविद्यकथा ।
राज्ञो वैदग्ध्यदोषेण यस्यविद्याऽवसीदति ।
उक्तोऽवसन्नविद्योऽसौ विद्यापारगमानसैः ॥ १

आसीत् गङ्गादक्षिणकूले राढानामपुरी तत्र निरपेक्षो नाम राजा बभूव एकदा तस्य राजशब्दप्रतारितः सकलकविकलाकुशलो वाग्विलासो नाम कश्चित्कविराजो दुहूँवदर्शित स्तत्रा जगाम । तस्य राज्ञः प्रियसचिवविचक्षणनामान मुपगम्याह विचक्षण मां राजानं दर्शय । सो

भाषानुवाद ।

चौपाई ॥

जेकविकला कनक फल फलथि ॥ कल्पलता जौतक मन करथि ।
भोजदेव गेला सुर धाम ॥ प्रतिपद श्रमसारा से नाम ॥४

इतिपूजितविद्यकथा ।

अथप्रत्युदाहरणकथा । अवसन्नविद्यकथा ।

नरेन्द्रछन्द ।

नृप अविदग्धदोषसौं जनिकर विद्याहो अवसाने ।
तनिक नाम अवसन्नविद्य थिक कहिगेला सुज्ञाने ॥१

रहैगङ्गा दक्षिण पारमे राढा नामपुरी ताहिमें निरपेक्ष नामक राजारहथि एकसमय तनिक राजशब्द प्रतारित सर्व्वकविकला कुशल वाग्विलास नामक कोओ कवि दुहूँ तवध तत्य सम्प्राप्त भेलाह राजाकमन्त्री विचक्षण नामकें कहल अओ मन्त्रीविचक्षण हमरा

ब्रवीत् किमस्य राज्ञो दर्शनेन प्रयोजनं त्वं कविः इयं मविज्ञः तदुभ
यो समालापसुखं न भवितेति तर्कयामि ।

एकाङ्गविकलं न्धन्यं मन्ये तस्य महीभुजः ।
राज्येऽपि सति भोगाय जाता तस्य न विज्ञता ॥ २ ॥

कविराज उवाच । मन्त्रिराज अविज्ञोऽपि राजासौ मम कवितया नि
श्चित न्तोष मङ्गीकरिष्यति । यतः ।

नाना रससमाकीर्णा शब्दार्थगुणमण्डिता ।
आराधयति वाग्देवी सकर्णहृदयं न्कमिम ॥ ३ ॥

अपिच । अपराध्यति हि श्रोता वाचि श्रोत्र मनर्पयन् ।
सापराधः कवे र्यत्र श्रोता यत्न प्रसीदति ॥ ४ ॥

अपरञ्च । येन हृष्यति भारत्या सुधया श्रोत्रपेयया ।
स हृष्यति नरोऽनड्वान् घासग्रासेन केवलम् ॥ ५ ॥

भाषानुवाद ॥

राज दर्शन कराउ । ओ उत्तरदेल यथी कवि की एहिराजाक दर्शन सौं प्रयोजन अहाँ
कवि ओ अविज्ञ एहिदुनूगोटाकी कथय सरस की होति ई हम तर्ककरैछी ।

सोरठा ॥

एक अङ्गसौं हीन धन्य ताहि नृपतिक नुभाव ।
राज्येहुभोगविहीन नहि उत्पन्ना विज्ञता ॥२

कविराज कहल अयो मन्त्रिराज अविज्ञो जौं राजा तथापि हमर काव्यसौं निश्चयपरि
तोषयुक्तहय ताहुहेतु ।

दोहा ।

नाना रस शब्दार्थगुण वाग्देवीक प्रभाव ।
हृदय कर्णयुत ककरनहि अतिशय सुख मन आव ॥३॥
सापराध श्रोता न सुन कविक वचन दयकान ।
कविक दोष श्रोता सुनल नहिप्रसन्नता आन ॥ ४
कर्णपेय वाणी सुधा सुनि नहर्ष मनपाव ।
से नर वृषभ समान थिक घाँसक दर्शन आव ॥५॥

अन्यच्च । न शृणोति न जानीते ज्ञात्वा यो न प्रयच्छति ।

त ङ्कविः कविभावेन किमाराध्य करिष्यति ॥ ६ ॥

सचिव उवाच । अतएवोच्यते न द्रष्टव्यो भवतायं भूपालः । कविरुवाच मन्त्रिराज मम कविता कर्णगताऽपि यन्नाराधयति सोऽद्भुतः पुरुष स्त च च दर्शनीयो भवति ततो महता सचिवप्रयत्नेन स राजा निरपेच्च स्तस्मै कविराजाय दर्शन न्ददौ कविश्च राजान न्दृष्ट्वा पद्यमिदं पपाठ ।

तद्यथा । वलारिपुरगोपुरे मनुजदेव देवाङ्गनाः

प्रसून मिव नूतनं प्रथितखड्गवल्ल्या स्तव ।

स्तुवन्ति विमलं व्यँश स्त्वदरिवीरपाणिग्रह

प्रवुद्धमदनोत्सवा स्समरसिन्धुफेनोपमम् ॥ ७ ॥

राजोवाच । हे मन्त्रिणः किमयं विहगकुलकूजितकोलाहलाकारं प्रलपति । मन्त्रिणऊचुः । देव महानयं कवि र्दवयशो वर्णयति ततः पूजनीयो भवति राजोवाच । कथ मस्य पूजा कर्त्तव्या एतस्य कवितया म

भाषानुवाद ॥

सुनथि न नहि जानथि सरस देथिन मन उत्साह ।

तनिकाँ कवि कविभाव सौँ की सेवा करताह ॥६

मन्त्रीकहल कविकैं अतएवहम कहैछी अहाँ सौँ देखैयोग्य नहि ईराजा ।

कविकहल । अश्रो मन्त्रिजन सुकविक कविता कर्णगताक जे नहि आराधन करथि से आश्चर्य्यपुरुष ततय दर्शनीय थिकाथि ततय मन्त्रीक बहुत प्रयाससौँ तनि कविराजकाँ राजा दर्श न देल कवि पुनराजा काँ देखि एक सुपद्यपढलसे जेहनअर्थक ।

नृप अपनैं क प्रथित तरुआरि । लताकी तिँनवफूलनिहारि ।

सुरपति पुर गोपुर में वास । देववधू यशराशि प्रकास ।

समर समुद्र फेन समभान । अपनैं क सम नृपकेँ छथि आन ।

अपनैक अरिकाँ विहितविवाह । रम्भा मन मदनक उत्साह ॥७

राजा कहल मन्त्री की ई पच्छिकुल कोलाहल अनुकरण अनर्थ वचन वजैछ मन्त्रीलोक कहल । हेमहाराज ईमहाकवि छथि अपनैक यशोवर्णन करैछथि तैं पूजनीय थिकथि ।

राजा कहल कोन विधि हिनक पूजाकर्त्तव्या हिनकविताशौँ हमर धनवृद्धिहोएतवा

म धनं वर्द्धिष्यते सैन्यं वा । सन्निगाकचुः । धनस्य सैन्यस्य च फलं यशो वर्द्धते कविगिरा । तथाहि ।

कल्पादे रपि पूर्व्वपूर्व्वसमये वाचा कलागौरवा
दाराधत्र द्रविणैः कवी न्नृपतयो ये ये व्यतीयु र्भुवः ।
तेषा न्नाम सरस्वतीपरिणता वद्यापि सङ्गीयते
जाताः केन मृता न के तदितरे ज्ञाता न गेहा दहिः ॥ ८
यथा पात्रं सुवर्णानां भूमि र्भूमिरुहा यथा ।
तथैव स्थापनस्थानं यशसा कविभाषितम् ॥ ९ ॥

ततो राजन् भवान् पूजयितु मर्हत्येनं काञ्चनैः कविराजम् । राजो वाच । नहि मम तेन यशःस्थापनेन प्रयोजनं यत्रार्थव्ययकारिता रे रे मम पुरोवर्त्तिनः पुरुषाः किं पश्यथ दुरात्मान मेनं परचेत श्चौरं मम धनाहरणलालसं किमिति न निवारयथ ततो राजपुरो वर्त्तिभि र्व्वेत्रपाणिपुरुषै र्गलहस्तेन सकविराजो बहि र्न्निसारितः पपाठ । तद्यथा ।

भाषानुवाद ॥

सैन्य वाढत मन्त्रीलोकउत्तरदेल धनक सैन्यक फलयशोवृद्धिसे छिनकों वचनै वाठैछ देखलजाय ।

चौपाई ।

वचन कला गुण गौरववान । कविकाँ कयल नृपति सम्मान ।
कल्पादिहिसों आइलि रीति । धनपावथि कवि नृपति सुरीति ।
तनि नृपतिक अद्यावधि नाम । गुणिगण गवइत कथिसवठाम ।
कत जनमल कत२ मरिगेल । घरसों नामनबाहर भेल ॥८

दोहा ॥

जेहन कनक कपात्र हो वृच्छक पवनि समान ।
तेहन सुकविभाषित छुभाव सुयशस्थापन थान ॥९

ततय हे महाराज अपनै सम्मानकरी हिनि कविराजक सुवर्णादि धनसों । राजाकहल नहि हमरा तेहन यशः प्रख्यातिक प्रयोजन जाहिमे धनव्ययल रेरेपुरुष की देखैछें दुरात्मा का हिनका अन्यलनक मनसाक्कर हमरा धनक हरण लालसो को कियक नहि निवारण करैछें ततय राजाक निकटवर्त्तीं वेत्रहस्त पुरुष कविराजकाँ गलहस्तितकय आहा निष्काशि देल तथापि धगस्थित कविराज पढलपद्य ।

भ्रान्त्वा यत्परिषेवितु गुरुपदं त्यक्त्वा च निद्रासुखं
शास्त्रव्याकरणादि यच्च पठितं सर्व्वं वृथैवाऽधुना ।
लक्ष्मी र्नीचजनानुरागहृदया मूर्खो यदि क्ष्मापति
स्त्वा माराधयतोऽपि दुर्गति रियं वाग्देवि दूरं व्रज ॥ १०

इति पठन्नेव बहिरागत्य स कविः कोपेन कविता सन्न्यास ञ्चकार म न्त्रिणस्तु बहिरागत्य तं सन्न्यस्तसरस्वतीकं कविराज न्दृष्ट्वा सानुताप मूचुः । भो कविराज किमाचरित भवता यदस्याऽविदग्धस्य चरित्रेण स्वकीयहानिः कृता ।

रसार्द्राऽलङ्कारै रुचितपदबन्धे गुणवती
निदानं मोदानां बुधसदसि देशान्तरसखी ।
त्वया त्यक्ता कस्मा त्परगुणपरदोषेण कविता
प्रकोपस्याऽभूमि र्न्नखलु गुणधाम्नोऽपि हृदयम् ॥ ११ ॥

भाषानुवाद ॥

हरिपद ॥

भ्रमण कयल मदि गुरुपद सेवल निद्रा सुख परित्यागल ।
व्याकरणादि शास्त्र श्रम पढलहु कैहन भेलहु अभागल ।
लक्ष्मी नीचजनक अनुरागिणि मूर्ख महीपति एहन ।
दूर जाउ हे देवि सरस्वति अँहक भक्त फल कैहन ॥ १०

ई पढयित बाहर आवि से कवि कोपसौं कविताक परित्याग कयल मन्त्री सबपुन बाहर आविअनुतापसौं कहल अहो कविराज कीकयल अहाँ जेहिनिमूर्ख चरित्र सौं अपन हानि कयल ।

चौपाई ।

अलंकार रसयुक्ता नीकि । समुचित चरण बन्धमें नीकि ।
हर्षमसूचक थिकथि निदान । बुधजन सभा देथि बड़मान ।
देशान्तर में सखी स्वरूप । कविता को मानथि वरभूप ।
दोष अविज्ञक कविता त्याग । क्रोधहि भारण एहन विराग । ११

अन्यच्च। त्रिदशा न हेया कविभिः कदाचि
न्निरक्षरा न्वीक्ष्य धनाधिनाथान्।
आयुक्तमुक्तां कुलटा न्निरीक्ष्य
कुलाङ्गनाः किं कुलटा भवन्ति ॥ १२ ॥

कविरुवाच। एतच्च निन्दाकलुषितेन मया सन्त्रस्ता कविता। मन्त्रि णऊचुः। किमस्य निन्दया भवतः।

य कोपि निजदौरात्म्या दनिन्द्य मपि निन्दति।
सा निन्दा निन्दकस्यैव मता न्निन्दास्पदं कुतः ॥ १३ ॥

ततस्तै र्मन्त्रिभि स्तं कविराजं काञ्चनै रभ्यर्च्य स्वगृह म्प्रस्थापि तः तथा कृतकविताभ्यासश्च तत्र विद्याऽवसन्नैव बभूव ॥

इत्यवसन्नविद्यकथा।

भाषानुवाद ॥

अपनें गुणमन्दिर कविराज। दुहुँ वक वश एहन समाज।
हमरह्न सवकाँ मन होकलेश। किकरयि कथि अविदग्धनरेश।
देखि निरक्षर धनमय धाम। कवि कवितान त्याग तहिठाम।
कुलटा जन मुक्तामय अङ्ग। कुलाङ्गना की धर से रङ्ग ॥१२

कविकहल एहि राजाक निन्दा हारा हमरा सों कविता गेलो। मन्त्रीलोक कहल की हिनक निन्दा सों अपनेंकाँ ॥

दोहा ॥

जे निन्दा कर मूर्ख जन नहिअनिन्दकें दोष।
निन्दास्पद कह्न सुजनहो निन्दक निन्दा पोष ॥ १३

ततय से मन्त्रीलोक ताहि कविराजकाँ सुवर्णसों अर्च्चित कय अपन गृह पठाओल त थाविध कयल कविताभ्यास सें कविकविद्या समाप्तभेलो।

इत्यवसन्नविद्यकथा।

अथाविद्यकथा ।

तद्यथा वाक्ये नाभ्यस्यतो विद्यां जन्मैव नन्दित भवेत् ।
आसमुद्रमहीपालोऽविद्यो मूर्ख उच्यते ॥ १
वैभेयस्य श्रिय न्दृष्ट्वा गुणेभ्यःक उदासते ।
श्रियावले वृं तस्यापि वालिशस्य कुतोयशः ॥ २

बभूव तौरभुक्तौ रविधरो नाम ब्राह्मणः समूर्खो धनाढ्योऽपि वाग पटुः सर्व्वैरुपहस्यमानः परमदुःखित श्चिन्तया मास ।

मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम् ।
मुखस्य भूषणं पुंसः स्या द्वेवैका सरस्वती ॥ ३

यतः । वदन्त्यशुद्धमज्ञाना न्मूर्खः सदसि हस्यते ।
उक्तदोषसमाधानं ग्रहिण स्याति हस्यते ॥ ४

भाषानुवाद ॥

अथअविद्यकथा ।

चौपाई ।

प्रथमवयस नहि विद्याभ्यास । सगर जन्म भरि तनिकर हास ।
आसमुद्र पृथिवी महाराज । तदपि अविद्य मर्खजन वाज ।१
मूर्ख देव यथहो श्रीमान । गुण सौं कीलदास विद्वान ।
श्रीवल परिवृत नहि यशपाव । वालिस से निज नाम कहाव ॥ २

रहथितिरहुति में रविधर नामक ब्राह्मण सेमर्ख धनाढ्य परंच वचनमें अपटु सब सो उपहसित चिन्ता कयल ।

दोहा ।

मुखभूषण ताम्बूलहो एहन व्यर्थ जन वाज ।
मुखभूषण थिकि शारदा सपुरुष जनका आज ॥ ३
कहयअशुद्ध अज्ञान सौं सभा अबुध का हास ।
उक्तदोष समधान पर अधिक हास अति वास ॥४

बाल्ये न शिक्षिता विद्या यौवने नार्ज्जितं यशः ।
किं कृतन्तेन जातेन जननीक्लेशकारिणा ॥ ५

तदिदानीं ममवृद्धस्य विद्याभ्यासो सम्पन्न एव यतः ।

यः कालः कर्म्मणो यस्य तत्रचैतन्नसिद्ध्यति ।
न सिद्ध्यति कदाप्येत त्कर्त्ता चानुशयी भवेत ॥ ६

ततः पुत्रं पाठयामीति परामृष्य पण्डितद्वारा धनोपक्षयेन मनधरनामानं पुत्रं पाठयामास पश्चात्तस्य सहाध्यायिभि र्म्मनधर इत्य व्युत्पन्ननामश्रुत्वा पठितम् ।

ज्ञातं पितुरपाण्डित्यं नामधारणकारणात् ।
सतेनैवापमानेना ध्ययनेकृतयत्नकः ॥ ७

भाषानुवाद ॥

बालकमे जे पढल नहि तरुण यशोर्ज्जन हीन ।
माता कष्टक हेतु से जन्मकि होल नवीन ॥५

तेँ एखन हमरा वृद्धको विद्यापढव से सम्पन्न हयत से सम्भव नहि हेतु ।

शोरठा ।

जे कर्म्मक जे काल ततय सिद्धि की होय नहि ।
जीवन यद्पि विशाल कर्त्ता अनुशयि हो अवश ॥ ६

ततय पुत्रको पढावी ई विचारि पण्डितद्वारा वित्तव्ययसौं मनधर नामक पुत्रका विद्याभ्यास कराओल पश्चात् तनिक सहाध्यायी विद्यार्थीं मनधर अव्युत्पन्न नाम सूनि श्लोक पढल तात्पर्य्य जे हन ॥

हरिपदछन्द ॥

उचित मनोधर मनधर तोहर भेलछ परीक्षा वापक ।
पशींवह कृपा शारदादेविक हयवह तों हो व्यापक ॥ ७

स मनधरः शास्त्रपारगामी बभूव पश्चादधिगतशास्त्रस्य तस्य पुत्रस्य गुणादर्पेण राजसम्मानवासनया पुत्रसम्मानवासनयाच पुत्रसमाजेन ब्राह्मणो राजधानीं जगाम तत्रच कृतराजदर्शनः कुशलप्रश्नानन्तरं राज्ञापृष्टः । राजोवाच । विप्र कथय वार्त्तां विप्रउवाच । ज्ञानोनास्ति मेवतदा कर्ण्य राजानंस्मेराननं दृष्ट्वा सज्जना नम्राननावभूवुः खला श्च सुतरां जहसुः । तदनन्तरं मनधरउवाच । रे दुर्ज्जनाः कथ मम पितरं हसत अनधिगताभिप्रायाः सर्व्वे निगृहीता यूयं मम पित्रा तु साधूक्तं यद्देवप्रस्तुतप्रश्नोत्तरे नो ज्ञानास्ति मेव लक्ष्मी रिव यथालक्ष्मीर्न्न विद्यते तथा ज्ञाऽपि न विद्यते एवं मितभाषित्वा वार्त्ताकथनासामर्थ्यं स्वकीयं नैस्स्वंच्च दर्शितं मम पित्रा तदा कर्ण्य राज्ञा परितोषेण महती पूजा कृता तस्य मनधरशर्म्मणो ब्राह्मणस्य उक्तञ्च साधुमनधर साधु अस्थाने स्थानं कृतवानसि एवं सति मनधरस्य पाण्डित्यं तत्पितुर्म्मूर्खत्व मेव निर्द्धारित सर्व्वैः ॥

भाषानुवाद ॥

से मनधर ताहि अपमान द्वारा अध्ययन में बहुत श्रम सौं शास्त्रपारगामी भेला। पश्चात् पण्डित पुत्रक अभिमान गुणादर्प्प सौं राजसम्मान वासना श्रो पुत्र सम्मान वासना हेतु पुत्र सहित ब्राह्मण राजधानी जाइत भेला। ततय राजदर्शन कुशलवार्त्ता उत्तर राजा पुछल हे ब्राह्मण कहू वार्त्ता ब्राह्मण कहल ज्ञानो नास्ति मेव से सुनि राजा का स्मित मुख देखि सज्जन नम्र मुख सन्ता खल लोक हसयित भेला। तदुत्तर मनधर कहल रे रे दुर्ज्जनलोक राजसभामें हमरा पिता पण्डितक कथा अभिप्राय विनु जनलै की हसयित छह हमर पिता समीचीन कहल। नोज्ञानास्ति मेव लक्ष्मी जकां ज्ञा नाम सरस्वती सेहो नहि प्रमित वचनहेतुक बहुतवार्त्ता करवामें अशक्तिता श्रोअपन निर्द्धन त दिखाश्रोल हमर वापसे सुनि राजा परितोषसौं महती पूजा कयल ताहि मनधरशर्म्मा ब्राह्मणकैं कहल साधु मनधर साधु अस्थानमें स्थान करयितभेलह एहना सन्ता मनधरक पाण्डित्य तनि पिताक मूर्खता निर्द्धारिता भेलि सबसौ।

उक्तञ्च । पुत्रेऽपिलब्धसन्माने नायशः खण्डित म्पितुः ।
निजै रेव गुणैर्ल्लोके पुरुषो याति पूज्यताम् ॥ ८

इत्यविद्यकथा ॥

अथखण्डितविद्यकथा ॥

एकदेशं विदित्वा य स्सर्व्वज्ञत्वं प्रकाशयेत् ।
गोष्ठ्यां खण्डितविद्यो सौ बुधानां याति हास्यताम् ॥ १

बभूव गोरक्षपुरे राजधान्या मुदयसिंहो नामराजा स च शरत्कालीनमहापूजामहोत्सवे कृतारम्भः श्रीदुर्गामाहात्म्यपाठाय बहून् ब्राह्मणान् परीक्षितविद्यान् वरयतिस्म तन्मध्ये चोज्ज्वलतिलकाद्यलङ्कृतं महारम्भदम्भमाकारसुन्दरं शुकवदभ्यस्तकतिपयाक्षरोच्चारणप्रगल्भन्दृष्ट्वा कुशशर्म्माणं ब्राह्मणं वृतवान् स च स्वीकृतवरणः स्वरच्युत मन्यथा

भाषानुवाद ॥

सोरठा ।

पुत्र प्राप्त सम्मान तनिक पिताक न अयश गत ।
अपनहि गुणै महान पुरुष पूज्य संसारमैं ॥ ८

इत्यविद्यकथा ।

॥ अथ खण्डितविद्य कथा ॥

दोहा ॥

पठित अल्प अभिमान बड़ पण्डित मण्डलि जाय ।
हास्यास्पद से होथि जन खण्डितविद्य कहाय ॥ १

रहथि गोरखपुर राज धानी मैं उदयसिंह नाम राजा से शरत्कालिक महापूजा परमोत्सवमैं बहुत उत्सव कयल आरम्भ श्रीचण्डीपाठनिमित्त ब्राह्मण परिचित गुण लोक कां वरण देथि ताहिमें उज्ज्वल तिलकादि सौं अलंकृत अति दम्भसौं आकार सुन्दर शुकवत कतोक अक्षर उच्चारण मे प्रौढ देखि कुश शर्म्मा ब्राह्मण कां वरण देल

वर्णं मपगतमात्रं दुर्गामाहात्म्यं पठित्वा । यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीन ञ्च यद्भवेत् । तत्सर्व्वं क्षन्तु मर्हसौ मेमातः कथ वै निश्चलमनः इति च मापनश्लोक मपि तथैव पपाठ । तदाकर्ण्य शुभङ्करशर्म्मनाम्ना राजपुरोहितेनोक्तं हे कुशशर्म्मन् कथ मिद मपि पदत्र मशुद्ध मेव पठसि तदत्र क्षन्तु मर्हसावपि क्षन्तु मर्हसीति पठ । तथापि ।

अल्याशुद्धिसमाधाने पठति क्षन्तु मर्हसौ ।
तदप्य शुद्धि मुच्चार्य्य दुर्म्मते किं करिष्यसि ॥ २ ॥

तदाकर्ण्य सर्व्वे ब्राह्मणा स्तं निनिन्दुः । राजा च त मशक्यनिर्व्वाह्ये कर्म्मणि कृतसंकल्प मधार्म्मिकं मूर्खञ्च निर्द्धारितवान् । तद्यथा ।

अनभ्यस्ते वस्तुन्यधिगम मुपन्यस्य वितथं ।
प्रमादात्रन् प्रस्तावे भवति नियतं खण्डितगुणः ।
सभायां सा निन्दा स्पृशति मनुजं कर्म्मणि यथा
मृतिः साधारण्या न भवति तथा खेदजननी ॥ ३ ॥

इनि खण्डितविद्य कथा ।

भाषानुवाद ॥

से अङ्गीकार कयल वरण स्वररहित अन्यथा वर्ण मात्रारहित दुर्गा माहात्म पढि यद क्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् । तत्सर्व्वं क्षन्तु मर्हसौमे मातः कसत्रवै निश्चलं मनः ई समापन श्लोको तेहन पढल से श्रवणकय शुभङ्कर शर्म्मनामा राजपुरोहित कहल थयो कुशशर्म्मा कीना इहो श्लोक अशुद्धे पठैछी तै एहिठाम क्षन्तुमर्हसि एहन पढू तथापि ।

हरपदिछन्द ॥

अल्प अशुद्धिक समाधान मैं क्षन्तु मर्हसो पाठ ।
वज्र अशुद्ध कुमतिउच्चारल कयलक्क महाकुठाठ ॥२

ततय ब्राह्मण पण्डित सब तनिक निन्दा करय लगलाह राजा तनिकों अशक्य निर्व्वाह कर्म्ममे कयल संकल्प अधर्म्मा ओ मूर्ख निश्चयकयल ॥

नहि अभ्यास अर्थ नहिज्ञान । पाठ करथि किछु आनक आन ।
होथि प्रमादी बुध प्रस्ताव । खण्डितविद्याक सहज स्वभाव ॥
सभा मध्य निन्दा वडि गोटि । एहिसो वरू मृति बूझक छोटि ।
पण्डित स्वाङ्गन अवद्गन काज । अब सीदित गञ्जित नहिवाज ॥

इति खण्डितविद्य कथा ॥

अथहासविद्यकथा ॥

तद्यथा। हासेन विद्यया यस्तु प्रभोर्भवति वल्लभः।
विकृताङ्गवचःकृत्यै हासविद्य स उच्यते ॥ १

बभूव काञ्चीनाम राजधानी तस्यां सुप्रतापो नामराजा तत्रैकदा कस्यापि धनिकस्य धनं चोरयन्तश्चत्वारश्चोराःसन्धिद्वारे प्रशास्तृपुरुषैः प्राप्ताः शृङ्खलेन बद्धा राज्ञे निवेदितश्च। राजा च घातकपुरुषा ना दिदेश रे घातकपुरुषा श्चतुरश्चौरा नेतान् नगरा द्वहि र्नीत्वा शूल मारोप्य मारयत तथाहि ॥

संवर्द्धनञ्च साधूनां दुष्टानाञ्च विमर्द्दनम् ।
राजधर्म्मं बुधाः प्राहु र्दण्डनीतिविचक्षणाः ॥ २

ततो राजाज्ञया घातकपुरुषैस्त्रय श्चौरा शूलमारोप्य हताः चतुर्थेन चिन्तितं यतः ॥

भाषानुवाद ॥

अथहासविद्यकथा ॥

दोहा ॥

हास सुविद्या हेतुसौं भूप सभा सत्कार।
विकृत अङ्ग ओ वचनसौं हासविद्य व्यवहार ॥१

भेला काञ्ची नाम राजधानी में सुप्रताप नामक राजा ततय एकसमय धनिकक धन चोरवितहि चारिचोर कां कोटवार सन्धिक मांझहि धयल शृङ्खल सौ खलकां बांधि राजा कां निवेदनकयल राजा घातक पुरुष का आज्ञा देल रे घातक ई चारुजन चोर कां नगर बाहर लयजाय शूलपर चढायकै घातकरक।

दोहा।

संवर्द्धन साधुक उचित दुष्ट कउचित विनाश।
राजधर्म्म बुधजन कहथि दण्डनीति विश्वास ॥२

ततय राजाक आज्ञानुसार घातक पुरुष तीनि चोर कां शूलीदय मारल चतुर्थ चोर विचारलक।

प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते ।
उपाये सफले रक्षा निष्फले नाधिकं मृते: ॥ ३

अपिच । व्याधिना पीड्यमानोऽपि मार्थ्य मार्गोऽपि भूभुजा ।
प्रत्यायाति यमद्वारा त्प्रतीकारपरो नरः ॥ ४

चौरउवाच । रे रे घातकपुरुषाः त्वस म्पौग युष्माभि र्हंता एव राजाज्ञया राजसन्निधानं कृत्वा मारयत यतोऽहमेकां विद्यां महतीं जानामि मयि मृते सा विद्याऽस्तं यास्यति राजा तु तां विद्यां गृहीत्वा मां मारयतु तेन विद्या मर्त्यलोके तिष्ठतु । घातकाऊचुः रे चौर पाप पुरुषाधम वधस्थान मानीतोऽसि किं मपरंजीवितु मिच्छसि कथं वा तवाऽधमस्य विद्या भूपालेन पूजितव्या । चौर उवाच । घातकाः किं मूत राजकार्यप्रबाधं कर्त्तुं मिच्छथ यदि राज्ञा ज्ञातव्या तदा ग्रहीतव्या महतीयं विद्या किञ्च विद्यावार्त्ताकथकेभ्यो युष्मभ्यः प्रभुणा प्रसादः कर्त्तव्यः तत स्तस्य चौरवचनैः स्वामिकार्य्यानुरोधेन सा वार्त्ता राज्ञे निवे

भाषानुवाद ॥

दोहा ।

मृत्यु काल सम्प्राप्त यदि रक्षा करी उपाय ।
जौं उपाय फल दैवसौं रक्षाविफल नजाय ॥ ३
पीडित व्याधि यसाध्यजौं नृपतिक दण्डप्रयोक ।
यमद्वार सौं घुरल मन प्रतीकार कृत लोक ॥ ४

चौरकहल रे रे घातक पुरुष तौनिजान चोर हमर संगी तोहरा लोक सौं राजाक आज्ञा सौं हत भेले परंच हमरा राजाक सन्निधान कयमारह । हेतु हम महाविद्या जनैछी हमरा मृत भन्ता सेविद्या अस्तो भय जाइति राजा पुन सेविद्या ग्रहणकय हमरा मारथु तैंविद्या पृथिविमें रहय । घातक पुरुष कहल रे चोर पापी अधमवध स्थानमें प्राप्त भो भावइ जीवक इच्छा कोना तोर विद्या राजा ग्रहणकरता चोर उत्तर देल रे घातक लोकं को कहैछह राजकार्यक विघ्नकरैछह जौं राजा जानता तौं ग्रहण करता ई महाविद्या किन्तु ई विद्यावार्त्ता कहनिहार तोहरा सबहिमें राजा अतिशय प्रसाद करता ततय ताहि चोरवचनै स्वामिकार्य्यक अनुरोध सो से वार्त्ता राजाक

दिता राजा च सकौतुकं चौरमाहूय पप्रच्छ । राजोवाच । रे चौर कां विद्यां जानासि कथय चौर उवाच ॥ देव सुवर्णकृषिं जानामि राजो वाच । का परिपाटिः । चौर उवाच । देव सर्षपपरिमाणानि सुवर्ण बीजानि कृत्वा भूमौ उप्यन्ते । मासमात्रेण सर्षपसदृशान्येव कन्दलिन्यो भवन्ति पुष्यन्ति च तानि पुष्पाणि सुवर्णान्येव भवन्ति रक्तिकामात्रबीजे न पलसङ्ख्यकानि भवन्ति तद्देवः प्रत्यक्षं पश्यतु । राजोवाच । चौर सत्य मेतत् । चौरउवाच । देवस्य पुरतः कथाऽसत्यभाषणे शक्तिः यदि मम वचनं व्यभिचरति तदा मासान्ते ममापयन्तो भविष्यति तदा देवः शान्ति प्रसादकरणे प्रभु देव स्याद्धति । राजोवाच । भद्रं वप सुवर्णं ततश्चौरः सुवर्णं दाहयित्वा सर्षपप्रमाणानि बीजानि कृत्वा राजान्तःपुरक्रीड़ासर स स्तटे परमनिगूढस्थाने भूपरिष्कारं कृत्वा बभाषे । चौरउवा च । देव चेनैबीजेन सम्पन्ने वप्ता कश्चि दीयताम् । राजोवाच । त्वमेव किन्न वपसि । चौरउवाच । यदि सुवर्णवपने ममैवाधिकारो भवति तदाऽनया किमहं दुःखी भवामि किन्तु चौरस्य सुवर्णवपनाधि

भाषानुवाद।

निकट निवेदिता भेलि। राजा कौंतुक सहित ताहि चौरकाँ बजाय पुछल रेचोर कोन विद्या जनैछ सेकह चोर उत्तरदेल हे महाराज सुवर्णक खेती। राजापुछल। कोन परि पाटी। चोरकहल। सरिसो प्रमाण सुवर्ण बीज कय भूमिमें वाओग कयल जाइछ मास मात्रहि से कोंडरि होइछ पुष्पित होइछ सेपुष्प सब सुवर्ण होइछ। रत्ती प्रमाण मात्र बीजकौं पलप्रमाण होइछ सेयपनहि महाराज प्रत्यक्ष देखल जाय। राजा कहल रेचोर ई सत्यकथा। चोरकहल अपनेमहाराजक आगाँ ककरा मिथ्याभाषणक सामर्थ्य हयत जौं हमर कथा अन्यथा हयति तौंमास व्यतीत सन्ता हमर प्रसादमै अपनै प्रभु रहवे। राजाकहलनीक वाओग करह सुवर्ण दाहविसुद्धकय सरिसव प्रमाण बीज कय राजाक अन्तःपुर क्रीड़ा सरोवर निकट परमनिगूढ स्थानमें भूमिपरिस्कार कय कहल महाराज येह बीबीज सम्पन्न वाओग कर्ता कैओ देलजाय। राजा कहल तोंही कियक नहि वाओग करैछह चोरकहल। जौं चोरकाँ सुवर्ण वपनमें अपन अधिकार रहैत तौंएहि चोरि वृत्ति द्वारा कोहम दुःखी होइतहु किन्तु चोरकाँ सुवर्ण वपन अधिकार नहि जे

कारो नास्ति येनकदापि किमपि नचोरित भक्ति सवपतु देवएव किन्न वपत राजोवाच । मया चारणेभ्यो दातुं तातचरणानान्धनञ्चोरितं । चौरउवाच । तर्हि मन्त्रिणो वपन्तु । मन्त्रिणऊचुः । वयं राजोपजीविनः कथ मस्तेयिनो भवामः चौरउवाच । तर्हि धर्म्माधिकारी वपतु । धर्म्मा ध्यचउवाच । मया बाल्यदशायां मातु र्म्मोदका श्चोरिताः । चौर उवाच । यूयं सर्व्वेऽपिचौराः कथमह मेको मारणीयोऽस्मित श्चौरवचनं श्रुत्वा सभासदः सर्व्वे जहसुः राजापि हास्यरसापनीतक्रोधो विहस्याह रे चौर न मारणीयोऽसि । हे मन्त्रिणः कुबुद्धि रपि सुबुद्धिमानयं चौरो हास्यरस प्रवीणश्च ततो ममैव सन्निधाने तिष्ठतु प्रस्तावे मां हासयति खेलयति चेति सचौरो राज्ञा स्वसन्निधाने धृतः । श्लोकस्तु ।

न चौरादधमः कश्चि त्सोपि हासेन विद्यया ।
मृत्युपाशं समुच्छिद्य राज्ञो वल्लभतां गतः ॥ २
इति हास्यविद्याकथा चौर कथाच ॥

भाषानुवाद ।

कदाचित कोनो प्रकार चोरि नहि कयलें हयता से वपन करथु । वपनहि महाराज कियक नहि वाथीग कयल जादत राजाकहल । बालावस्थामें सेवकनर्त्त क कां देवाहेतु पिताक धन चोराओलहल चोरकहल । तों मन्त्रीलोक वायीग करथु मन्त्रीलोक उत्त रदेल हमरा सवहि राजोपजीवी कोना अचौर हयव । चोर कहल तो धर्म्माधिकारी वायीगकरथु धर्म्माध्य चकहल हमंहुबाल्यावस्थामें माताक मोदक चोराओल हल चोरकहल अपनें सवहु जन चोर कोना हम एकल मारलजायव सेचोरवचन सुनि सभा स्थलोक सव हसलाह राजाविहो हासरस सों कोप रहित विहसि आहल रे चोर तोर प्राणघात नहि हयत अयो मन्त्रीलोक यद्यपि कुबुद्धि यो अछि तथापि सुबुद्धिमान् ई चोर हासरसप्रवीण अछि ततय हमरहि निकट रहयो प्रस्तावमें हमरा हसायोत प्रसन्नकरत सेचोर राजाक आज्ञानुसार अपन निकट निवासी कयलगेल ।

दोहा ।

अधम थानकेँ चोर सन विद्या हास प्रभाव ।
मरण पाशकें काटिकें नृपति निकट सद्भाव ॥ २
इति चौरकथा हास्यविद्याकथा ।

वीरो विरहितो बुद्ध्या सुबुद्धिर्वीरतां विना ।
सविद्यश्च विना ताभ्यां नस्युः पूरुषलक्षणाः ॥ ३

प्रत्युदाहरणान्येषां नोक्तं विस्तरशङ्कया ।
दिङ्मात्रदर्शितञ्चेदं सम्यग्युक्तं मनीषिभिः ॥ ४

बुद्धिवीरत्वविद्यानां समुदाय सुदुर्लभः ।
आश्रया समुदायानां त्रैलोक्ये पुरुषास्त्रयः ॥ ५

तद्यथा । लक्ष्मीपती सर्वलोकाभिरामौ चन्द्राननौ चारुपायोदनीलौ ।
द्वौ पूरुषौ लक्षणैस्तैरुपेतौ नारायणो रूपनारायणो वा ॥ ६

अपिच सर्वत्र सर्वेशतया प्रसिद्धौ वृषस्थितौ भूतिविभूषिताङ्गौ ।
द्वावेव देवौ द्विजराजमौली शिवोऽथवा श्रीशिवसिंहदेवः ॥ ७

इति समस्तप्रक्रियाविराजमानरूपनारायणमहाराजाधिराज श्री देवसिंहपादानामाज्ञया श्री विद्यापतिविरचितायां सविद्यपरिचायको नामतृतीयः परिच्छेदः ॥ १

भाषानुवाद ॥

सोरठा ।

बुद्धि बिना नहि वीर नहि सुबुद्धि वीरत्व विनु ।
पूरुष लक्षण धीर बुद्धिवीरता विनु कतय ॥ ३ ॥

अनुष्टुप ॥

ग्रन्थविस्तर शंकासों प्रत्युदा हरणादिक ।
अनुक्तोबुध जानताह दिङ्मात्र अछि दर्शित ॥ ४

बरवा ।

बुद्धि वीरता विद्या तिनु समुदाय ।
तीनिलोकमें दुर्लभ तिनु जन पाय ॥ ५

सोरठा ।

सकललोक अभिराम चन्द्रानन नवघनसुछवि ।
लक्ष्मी पति गुणधाम रूपनरायण देव प्रभु ॥ ६
भूति भान सवठाम सकल ईश द्विजराज शिर ।
वृषारूढ शुचि नाम की शिव की शिवसिंह नृप ॥ ७

इति पुरुष परीक्षा भाषानुवादे तृतीय : परिच्छेद ॥

अथ पुरुषपरीक्षाचतुर्थपरिच्छेदः ॥

अथ राजा पारावारः पुनराह भगवन् मुने भवदुपदिष्टेन लक्षणेन पुरुष स्तावत्परिचितः पुरुषत्वस्य च किं फल मिति ज्ञातु मिच्छामि । मुनिरुवाच । कृतएव पुरुषत्वफलनिर्द्देशः पुरुषलक्षणश्लोकोत्तरार्द्धेन यत्पुरुषः पुरुषार्थवान् पुरुषार्था श्चत्वारः । तद्यथा ।

पुरुषलक्षणं प्रोक्तं फल न्तस्य निगद्यते ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाख्य म्पुरुषार्थ श्चतुष्टयम् ॥ १ ॥

तेषां चतुर्णा म्मध्ये प्रथमाऽभ्यर्हितत्वात् धर्म्म स्तावत्प्रस्तूयते । तद्यथा । दानाध्ययनयागादिवेदवाक्यानुसारतः ।
स्वाभीष्टसाधकः कर्म्म विशेषो धर्म्म उच्यते ॥ २ ॥

केचित्तु तज्जन्य मपूर्व्वं धर्म्म मिच्छन्ति । राजोवाच । अहं तस्मिन्नेव कर्म्माचरणे जातसंशयोऽस्मि तन्मम संशय न्निरस्य धर्म्मं प्रस्तौतु भवान् मुनिरुवाच । किं रूपः संशयः । राजोवाच । सन्त्यनेके बौद्धचार्व्वाक

भाषानुवाद ॥

अथ पारावार पुन कहयितभेल। हे भगवान मुनि अपनेक उपदेशित लक्षण सौं पुरुष तावत् परिचित पुरुषत्वक कीफल सेबुझक इच्छा अछि । मुनिकहल । कहलेकस पुरुषत्व फलक उपदेश पूरुषलक्षण श्लोक उत्तरार्द्ध सौं जेपुरुष पुरुषार्थ सहित होथि पुरुषार्थ चारि सेजे छन ।

शोरठा ॥

पूरुषल क्षण नाम कहलेहि हुनकौ फल तनिक
धर्म्म अर्थ औकाम मोक्ष चारि पुरुषार्थ थिक ॥ १

ताहि चारि मे प्रथम उपस्थित तावत धर्मक प्रस्तावना करैछी सेजे छन ।

हरिपद ॥

दाना ध्ययन याग आदिक जे वेद वाक्य अनुसार ।
कर्म्म विशेष स्वेष्ट साधक से धर्म्म कहय संसार ॥२

केओपुन अध्ययन यागादि जन्य अपूर्व्व धर्म्म कहथि कथि राजाकहल हेमुनि हमताही कर्म्म करय मध्य संशयालु रहैछी ततय हमर संशय छोडाय धर्म्मक प्रस्तावना करू अपने । मुनि पुछल । हेराजा कोरूप अपनैंकां संशय राजा कहल छथिअनेक बौद्ध

प्रभृतयः पाखण्डा सन्ति नैयायिकभट्टप्रभाकरप्रभृतयो बहवस्तीर्थिका स्तेऽपि परस्परमतविरोधिनो भिन्नसिद्धान्ताः सर्व्वे वक्तारः स्वपक्षरक्षण क्षमाः।

तथाहि। स्वस्वसिद्धान्तरक्षायां सन्त्यनेकेऽपि वाग्मिनः।
तेषां मतविरोधेन जायते धर्म्मसंकरः। ३ ॥

अपिच। पाखण्डाः परपक्षखण्डनपराः स्वं स्वं मतं कुर्व्वते
ते वेदद्विष एव वेदविदुष स्तेषां मतद्वैधिणः।
इत्थं हन्त परस्परं निगदतां वाग्युद्ध कोलाहले
दुर्बिभ्राम्यति धीमतोपि तपसि श्रद्धान धर्म्मे क्वचित्। ४ ॥

मुनिरुवाच। राजन् कुत्र एवं विधो धर्म्मसन्देहः परिगृह्यते भव ता किन्तु विधातुः प्रपञ्चे यत्र जातोसि तत्कुलक्रमागत मेव पन्थान मनुसर स एव ते धर्म्मः। तथाहि।

भाषानुवाद ॥

चार्व्वाक आदि पाखण्डी। नैयायिक भट्ट प्रभाकर प्रभृति तीर्थिक सेहोपुन परस्पर मत विरोधी भिन्ने भिन्न सिद्धान्त एव वक्ता निजपक्ष रक्षामे दक्ष।

सोरठा।

अपन अपन सिद्धान्त रक्षा पण्डित दक्षमति।
बहुमत भेदनितान्त धर्म्मक सङ्कर प्राप्तहो ॥ ३ ॥

चौपाई।

पाखण्डी परपक्षन जान। अपन अपन मत करथि प्रधान।
वेदक चोगणा बहुत विरुद्ध। वेदवादि सों अर्थक युद्ध ॥
वचन कोलाहल भलसंग्राम। मतिमानहु कों भ्रम तेहिठाम।
तपमें तैं नहि श्रद्धा जाय। कहुकहु हे मुनि सुगमउपाय ॥४

मुनिकहल हेराजा कतय एहन सन धर्म्म सन्देह ग्रहण कयल अपने किन्तु विधाताक प्रपंचमें जतय उत्पन्न अपने ताहि कुलक्रम आगत जेपथ सैह अनुसरण सैह ई अपनेक धर्म्म हेतु।

एको विधि स्तदकृत ञ्च जगत्सु किञ्चि
त्तस्येच्छया त्वमपि यत्र कुलेऽसि जातः ।
तद्दृष्ट मेव कुरु कर्म्म ततः प्रमादन्न्
धाताऽपराध्यति परन्न भवान् कदाचित् ॥ ५ ॥
वस्तुतस्तूज्ज्वलः पन्था वेदमार्ग्गानुसारिणाम् ।
येन गच्छन्ति धीमन्त स्तर्क्कनिष्णातबुद्धयः ॥ ६ ॥
अङ्कानीत मिवाज्ञानं ज्योतिश्शास्त्रं प्रदीपवत् ।
चन्द्रसूर्य्योपरागादिसाक्षिकं यत्र जायते ॥ ७ ॥
वश्याकर्षणविद्रादि प्रत्यक्षफलसाक्षिकम् ।
यत्रास्त्यागमशास्त्रञ्च शस्तं सन्देहभेदकम् ८ ॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सदंशादृष्टफलोदयम् ।
अर्थसम्वादिवाक्यञ्च वैदिकं यत्र तिष्ठति ॥ ९ ॥

भाषानुवाद ॥

चौपाई ॥

एक विधाता ई संसार । तनिकन्हि इच्छा सबविस्तार ।
जन्मभेल विधिकृत कुलजतय । धर्म्म करूगय जेभक्ति ततय ॥ ५
जौ विगड़य किछु विधिह्विकदोष । निजकुल धर्म्म करू परिपोष ।
आपराध विधि घरनन्हि छयव । जौ कुलविहित सुपथ में जयव । ५
वस्तु तस्तु उज्ज्वल श्रुतिपंथ । वेद मार्ग्ग अनुसारिक ग्रन्थ ।
जेपथ अनुसर लोक महान । तर्क्क शास्त्र समाक मति मान ॥६
ज्योतिश्शास्त्र प्रदीप समान । अंकानीत हरथि अज्ञान ।
चन्द्र सुर्य्य ग्रहणादिक ज्ञान । बड़ प्रत्यक्ष कतह्नु अनुमान ७
वश्याकर्षण सिद्धि अनेक । फलप्रत्यक्षज्ञान की छेक ।
आगम शास्त्र जतय मत वेद । शास्त्रकप सन्देहक भेद ॥८
तदंशेण दृष्ट फलोदय आदि । वैदिक वाक्य अर्थ संवादि ।
अन्वय व्यतिरेकान्हिमों जाहि । धर्म्म महोत्तम मानव ताहि ॥९

एवं वेदबोधित एवधर्म्मः समीचिनः । राजोवाच । मुनेतीर्थिकाना मपि बहुविधीमतभेदः । केपि शिवं केपि विष्णुं केपि ब्रह्माण माराध्य त्वेन मन्यन्ते तत स्तं पुमध्ये कस्मिन्नर्प्पयामि चेतो महानयंसन्देहः ।

विष्णुं केपि निवेदयन्ति गिरिजानाथन्त्वकेचित्तथा
ब्रह्माण म्प्रभु मुल्लपन्ति भुवने नाम्नैव भिन्नक्रमः ।
निर्णीत म्मुनिभि स्सतर्क्क मतिभि र्वेदिश्व मेकेश्वरं
तच्चिन्तापरमानसे त्वयि पुनर्भ्भिन्ना कुतो भावना ॥ १० ॥

तत उपवासव्रतपूजाध्यानादिभि स्तदाराधन मेव धर्म्मः ।

तन्धर्म्मं कुरुते यस्तु धार्म्मिक स्त्रिप्रकारकः ।
सात्विक स्तामस श्चैव तथैवाऽनुशयी भवेत् ॥ ११ ॥

तेषा म्मध्येत्र प्रथमं सात्विककथा प्रारभ्यते तद्यथा बभूव मिथिलायां बोधिनामा कायस्थः सतु कायस्थकुलमर्य्यादया राजनियोगं कुर्व्वाणो पि न प्राणिनं हिनस्ति न परस्व मादत्ते न परस्त्रियं कामयते स्वामि

भाषानुवाद।

एहिप्रकार सौं वेदबोधितजे धर्म से समीचीन थिक । राजापुछल । हेमुनि ग्रन्थ कर्त्ता लोकक बहुत मतभेद केओ विष्णु केओ शिव केओब्रह्मा इत्यादि उपासना विषय कहयिछथि ततय ताहिमैं कतयहम अपनमन अर्पण करब महान ई सन्देह मुनिकहल ।

चौपाई ॥

विष्णु शंभु ब्रह्मा पुन जैह । परमेश्वर एके कथि सैह ।
नाम भेद कारणमन धान । कारण केवल ध्यानी जान ॥१०

ततय उपवास व्रत पूजा ध्यानादिसौं तनिक आराधन सैहधर्म्म ।

चौपाइ ॥

से गोट धर्म्म करथि पुनजैह । धार्म्मिक नाम कहावथि सैह ।
तीनि भेद धार्म्मिक तहिठाम । तात्विक तामस अनुशयि नाम ॥११

ताहिमैं प्रथम तात्विककथा प्रारम्भ करैछी सेजे छन रहथि मिथिलामै बोधिनामक कायस्थ सेपुन कायस्थ कुल मर्य्यादासौं राजसेवा करितंह्न तथापि नहि प्राणीक हिंसा करथि नहि आनकधन ग्रहण करथि नहि परस्त्रीक कामना स्वामीक हित जीव्यधनसौं

वृत्तेन जीव्यधनेन केवलं जीवति शूद्रोचित माह्निकं स्वकीयाञ्च नोचितं दानं देशकालोचितं ब्राह्मणाराधनं कुर्व्वाणः शिवपूजापरायणः समय न्निनाय प्रत्यासन्ने चान्तकाले पद्य मिदं श्रुतं पौराणिकम् ।

परहिंसापरद्रव्यपरदारापराङ्मुखः ।
गङ्गा प्याह कदा गत्य मा मयं पावयिष्यति ॥ १२ ॥

इति श्रुत्वा परामृष्टवान् यदा जन्मनो मया हिंसा न कृता परद्रव्य मदत्त न्न गृहीतं न परदाराभिलाषः कृतः तदह मपि तद्विशेषणत्रय विशिष्ट एव यतः ।

अकृत्यं दूरत स्त्यक्तं सुकृत्ये नोद्यता कृता ।
तत्वे नैष्ठिकभावेन नीत ञ्च सकलं वयः ॥ १३ ॥

ततो भगवत्या गङ्गया वाक्य मिदं परीक्षेऽहं पश्चाद्भागीरथी म द्दिश्य गत्वा कूलाद्र्द्धक्रोशमात्रप्रदेशे स्थित्वा तत्पौराणिकं वाक्यार्द्धं स्वकीयश्लोकार्द्धेन पूरयित्वा श्लोक मपाठ ॥ तथाहि ॥

भाषानुवाद ।

केवल जीवथि शूद्रजातिक उचित दिनकृत्य अपन कुलउचित पूजादेश कालानुसार दान ब्राह्मणक आराधन करयित शिवपूजा परायण समय विताय प्राप्त अन्त समय पौराणिक एकश्लोक सुनल जकर तात्पर्य्य ।

परहिंसा परधन पर दारा सभसों चित्त फराक ।
कहिया आबि पवित्र करता कहगंगा ई वाक ॥ १२

ई सुनि विचार करयितभेला आजन्म सों हम परहिंसा नहि कयल परधन नहिलेल परस्त्रीक अभिलाषा नहि कयल ततय हम तीहन सकल विशेषण विशिष्ट थिकहु हेतु ।

हरिपद छन्द ।

त्यागि अकर्म्म दूर भल कर्म्महु नहि उग्रता जनाओल ।
तत्वविषय श्रद्धाक भाव सों सगरो वयस गमाओल ॥ १३

ततय भगवती गङ्गा सों ई वाक्य हम परीक्षा करी पश्चात गङ्गाक उद्देश जाय कूल सों आधकोसपर रहि पौराणिक श्लोकक तात्पर्य्यमें आधा अपन कृत योजित कय पढल ।